

कङ्कालमालिनी तंत्र



अनुवादक :- एस. एन. रुपेंद्रलवाल





॥ क्लो ॥

पार्वती-भैरव-संवादात्मकं

1864

कड़कालमालिनीतन्त्रम्

(हिन्दीटीकोपेतम्)

अनुवादक :

श्री एस० एन० खण्डेलवाल :



प्रकाशक :

भारतीय विद्या संस्थान

सी० २७१५९ जगतगंज, वाराणसी

©प्रकाशक—

भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता

सी० २७/५९, जगतगंज, वाराणसी—२२१००२

प्रथम-संस्करण १९९३ ई०

मूल्य—२०/-

मुद्रक—

वेवर्षति प्रेस

एस. ११४०५ पंचकोशी रोड, नईविस्ती वाराणसी ।

समर्पण



महान् कर्मसाधक द्वारिकानाथ जी खण्डेलवाल



तन्त्रमूर्ति
महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ जी कविराज



निवेदन

यद्यपि कङ्काल शब्द से अस्थिरंजर का तात्पर्य ध्वनित होता है, तथापि यहाँ उसका अर्थ है मुण्ड-नरमुण्ड ! जिनकी ग्रीवा नरमुण्ड माला से सुशोभित हैं, वे हैं कङ्कालमालिनी । जो मुण्डमाला है, वही है वर्णमाला, अर्थात् जिन्होंने वर्णमालारूपी मातृका की माला को अपनी ग्रीवा में धारण किया है, वे हैं कङ्कालमालिनी ।

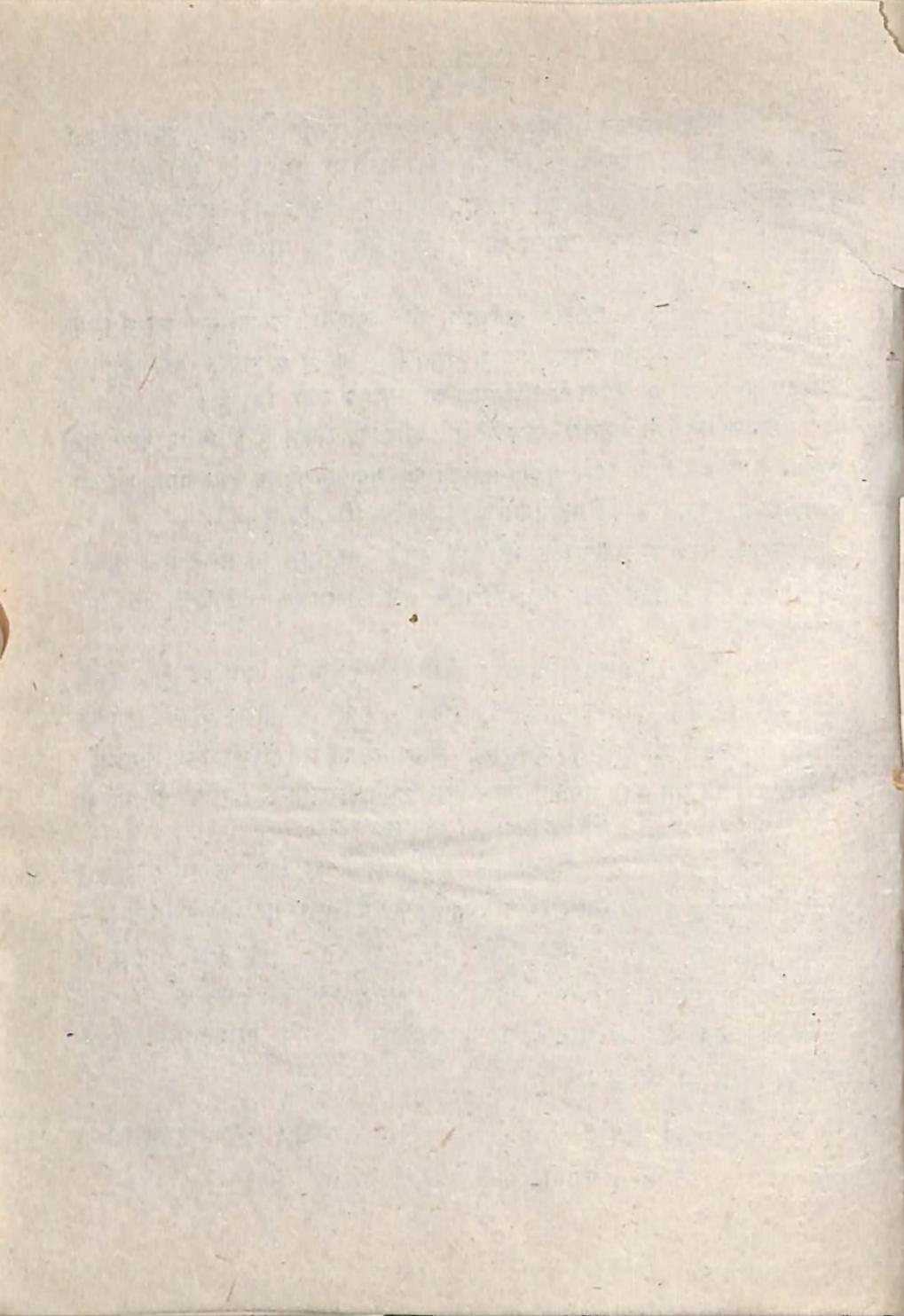
इस तंत्र के प्रथम पटल में वर्णमाला की व्याख्या अंकित है । इस तंत्र के अनुसार अ से अः पर्यन्त रुवर वर्ण सत्त्वमय है । क से थ पर्यन्त वर्णसमूह को रजोमय तथा द से क्ष पर्यन्त के वर्णसमूह को तमोमय कहा गया है ।

द्वितीय पटल में मन्त्रार्थ—मन्त्रचैतन्य आदि का अंकन है । तृतीय पटल गुरु अर्चना से सम्बद्ध है । इसमें अमित फलप्रदायक रुग्ण-कवच गुरु तथा गीता का भी समावेश है । गुरुतत्त्व की महनीयता से यह पटल ओतप्रोत है ।

चतुर्थ पटल में महाकाली मंत्र एवं उसके माहात्म्य का अंकन है । इसमें अक्षर मंत्र भी उपदिष्ट है । साथ ही महाकाली की सम्यक् पूजाविधि का भी निर्देश दिया गया है ।

पंचम पटल महाकाली के अनन्य राधकों के लिये हितकारी है । इसमें पुरश्चरण विधान, प्रातः कृत्य, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, गणपति, भैरव, श्वेतर्पाल प्रभृति देवताओं की बलि, भूतशुद्धि, न्यासादि का भी उपदेश दिया गया है । पुरश्चरण विधान का समापन करते हुये डाकिनी-राकिनी आदि देवियों का दीजोद्धार भी इस तंत्र की विशेषता का परिचायक है ।

यह तंत्र दक्षिणाम्नाय के अन्तर्गत है ? अर्थात् यह शिव के अधोर मुख से अभिनिःश्रित है । अभ्याचार तन्त्रमतानुसार दक्षिणाम्नाय से सम्बन्धित है—बगला, वशिनी, त्वरिता, धनदा, महिषध्नि, महालक्ष्मी । यह कहा जाता है कि यह तंत्र प्रारम्भ में ५०००० श्लोकों से युक्त था, परन्तु काल के प्रवाह में लुप्त होते-होते जो अवशिष्ट हैं, उसे ही अनुवाद के साथ पाठकगण के लाभार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है ।



कङ्कालमालिनीतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

ॐ नमः श्री गुरवे ।

भैरवयुवाच—

त्रिपुरेश महेशान पार्वतीप्राणवल्लभ ।
जगद्वन्द्वा शूलपाणे वर्णनां कारणं वद ॥१॥

भैरवी पूछती हैं—हे त्रिपुरेश, हे महेश, हे पार्वती प्राणवल्लभ ! हे जगद्वन्द्वा शूलपाणे ! कृपया वर्णसमूह के कारण का वर्णन करिये ॥१॥

श्री भैरव उवाच—

कथयामि वरारोहे वर्णनां भेदमुत्तमम् ।
न प्रकाश्यं महादेवी तव स्नेहात् सुभाषिणी ॥२॥
यज्ञात्वा योगिनो यान्ति निगुणत्वं मम प्रिये ।
तच्छृणुत्वं स्वरूपेण महायौवनगविते ॥३॥

श्री भैरव कहते हैं—हे वरारोहे, सुभाषिणी महादेवी ! मैं तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण परन्तु होकर वर्णसमूह के अत्युत्कृष्ट रहस्य का वर्णन करता हूँ । यह प्रकाश भहि है ।

हे प्रिये, हे महायौवनगविते ! जिसे जानकर योगीगण निगुणत्वं प्राप्त करते हैं, उसका स्वरूप सुनो ॥२-३॥

शब्दबद्धस्वरूपस्तद् आदिक्षान्तं जगत्प्रभुः ।
विद्युजिह्वा करालास्या गर्जिनो धूम्रभैरवी ॥४॥
कालरात्रिविदारी च महारौद्री भयंकरी ।
संहारिणो करालिनी उर्ध्वकेश्याग्रभैरवी ॥५॥

शब्दबहुरूप अकारादिक्षकारान्त (शब्द समूह) ही जगत का प्रभु है ।
 अ=विद्युजिह्वा, आ=करालास्या इ=गजिनी, ई=हृष्मैर्भवी, उ=कालरात्रि,
 ऊ=विदारी, ऋ=महारौद्री, ऋू=भयंकरी, छू=संहारिणी, ए=उर्वकेशी, ऐ=उग्र-
 भैरवी हैं ॥४-५॥

भीमाक्षी डाकिनी रुद्रडाकिनी चण्डिकेति च ।

एते वर्णाः स्वराः ज्ञेयाः कौलिनी व्यञ्जना शृणु ॥६॥

क्रोधीशो वामनश्चण्डो विकार्युत्मतभैरवः ।

ज्वालामुखो रक्तदंष्ट्राऽसिताङ्गो वडवामुखः ॥७॥

विद्युत्मुखो महाज्वालः कपाली भीषणो रुहः ।

संहारी भैरवो दण्डी वलिभूगुग्रशूलधृक् ॥८॥

सिंहनादो कपर्दी च कृदलाभिर्भग्नद्वृणः ।

वहुरूपी महाकालो जीवात्मा क्षतजोक्षितः ॥९॥

ओ=भीमाक्षी, औ=डाकिनी, अं=रुद्रडाकिनी, अः=चण्डिका ही स्वरवर्णात्मिका है । हे कौलिनी ! अब व्यञ्जन वर्णों को सुनो ।

क=क्रोधीश, ख=दामन, ग=चण्ड, घ=विकारी, ङ=उत्मतभैरव, च=ज्वाला मुख, छ=रक्तदंष्ट्र, ज=असितांग झ=वडवामुख, व=विद्युत्मुख, ट=महाज्वाल, ठ=कपाली, ड=भीषण, ढ=रुह, ण=संहारी, त=भैरव, थ=दण्डी, द=वलिभूक, ध=उग्रशूलधृक्, न=सिंहनादो, प=कपर्दी, फ=करालाग्नि, व=भयंकर, भ=वहुरूपी, म=महाकाल, य=जीवात्मा, र=क्षतजोक्षित ॥६-९॥

ब्रह्मेदो रक्तश्च चण्डीशो ज्वलनध्वजः ।

वृषब्धजो व्योमवक्त्ररत्रैलोक्यग्रसनात्मकः ॥१०॥

ल=बलभूद, व=रक्त, श=चण्डीश, ष=ज्वलनध्वज, स=वृषध्वज, ह=व्योम-वक्त्र, थ=त्रैलोक्यग्रसनात्म रूप से ककारादि से क्ष पर्यन्त व्यञ्जन वर्ण को जानना चाहिये ॥१०॥

एते च व्यञ्जनां ज्ञेयाः कादिक्षान्ताः क्रमादिताः ।

अकारादिक्षकारान्ता वर्णस्तु शिवशक्त्यः ॥११॥

पञ्चाशाच्च इमे वर्णा ब्रह्मरूपाः सनातनाः ।
 येषां ज्ञानं विना वामे सिद्धिर्नस्याद् गुरुस्तनी ॥१२॥
 ते वर्णसागराः प्रोक्ता गुणत्रयमयाः शुभे ।
 विद्युजिह्वामुखं कृत्वा चण्डकान्तं नगात्मजे ॥१३॥

अकारादि अकारान्त वर्ण शिवशक्ति स्वरूप है । यह पचास वर्ण समष्टि सनातन ब्रह्मरूप से विद्यमान है । हे वामे ! ज्ञान के विना सिद्धि संभव ही नहीं है । हे शुभे ! इन्हें गुणत्रय रूप वर्ण सागर कहा जाता है । विद्युजिह्वा अर्थात् अकार से लेकर चण्डका (विसर्ग) पर्यन्त वर्णसमूह सत्त्वगुणयुक्त होते हैं ॥११-१३॥

सत्त्वगुणमया वर्णा रजोगुणमयान शृणु ।
 क्रोधोशाददाण्डपयन्ता व्यञ्जनां राजसाः स्मृताः ॥१४॥
 वलिभुग्वर्णमारंभ्य त्रैलोक्यग्रसनावधि ।
 ज्ञेयोस्तमःस्वरूपान्ते तेभ्यो जातान् शृणु प्रिये ॥१५॥

हे नगात्मजे । इसबार रजोगुणयुक्त वर्ण का वर्णन करता हूँ । उन्हें सुनो । क्रोधीश (क) से आरंभ करके दण्डी (थ) पर्यन्त जो व्यञ्जन हैं, उन्हें रजोगुण-युक्त जानो ।

बलिभुक् (द) से प्रारम्भ करके त्रैलोक्य ग्रसनत्माक (क्ष) पर्यन्त समस्त वर्ण तमोगुण युक्त हैं । हे प्रिये ! अब इनकी उत्पत्ति को सुनो ॥१४-१५॥

गुशब्दश्चान्धकारः स्याद्रशब्दस्तन्निरोधकृत् ।
 अन्धकारविरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते ॥१६॥
 गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रकारः पापहारकः ।
 उकारस्तु भवेद्विष्णुस्त्रितयात्मा गुरुः स्वयम् ॥१७॥

गुरु शब्द का अर्थ यह है । ग=अन्धकार । रु=अन्धकार का निरोध । जो अज्ञानान्धकार का निरोध करते हैं, वे गुरु हैं । ग कार सिद्धिदाता तथा र कार पापहारी है, उ कार तो विष्णु है । अतः गुरु स्वयं ही तीन रूपों से युक्त हैं ॥१६-१७॥

आदावसौ जायते च शब्दब्रह्म सनातनः ।

वसुजित्वा कालरात्र्या रुद्रडाकिन्यलंकृता ।

विषवीजं श्रुतिमुखं ध्रुवं हालाहलं प्रिये ॥३५॥१८॥

ॐ तीन वर्णों द्वारा गठित है । वसुजित्वा अ कार, कालरात्रि उ कार तथा रुद्ररूपी अनुस्वार से ॐ कार गठित है । हे प्रिये ! यह शब्दब्रह्मरूपी बीजमन्त्र जगत् प्रपञ्च के लिये विषस्वरूप है । अर्थात् मायाप्रपञ्च को नष्ट करनेवाला और श्रुति का मुख है ॥१८॥

चण्डीशः क्षतजारुद्धो धूम्रभैरव्यलङ्घकृतः ।

नादविन्दु समायुक्तं लक्ष्मीदीवीजं प्रकीर्तितम् ॥श्री०॥१६॥

अब श्री मन्त्रवर्णन सुनो । चण्डीश शकार, क्षतज अर्थात् 'र' कार पर आरुदा धूम्रभैरवी, ई कार द्वारा अलंकृत तथा नादविन्दु से संयुक्त यह मन्त्र लक्ष्मीदीवी का बीज स्वरूप है । ऐसा तांत्रिक विद्वान् करते हैं ॥१९॥

क्रोधीशं क्षतजारुदं धूम्रभैरव्यलङ्घकृतम् ।

नादविन्दुयुतं देवी नामबीजं प्रकीर्तितम् ॥क्री०॥२०॥

क्रोधीश अर्थात् क कार, क्षतज अर्थात् र कार पर आरुदा धूम्रभैरवी ई-कार द्वारा शोभिता तथा नादविन्दु समायुता है । इसको कालिका दीज (नामबीज) कीं कहते हैं ॥२०॥

क्रोधीशो बलभृद् बलिभुग् धूम्रभैरवीनादविन्दुभिः ।

त्रिमूर्तिमन्त्मथः कामबीजं त्रैलोक्यमोहनम् ॥कली०॥२१॥

क्रोधीश अर्थात् ककार, बलभृद् अर्थात् ल कार से युक्त धूम्रभैरवी ई कार द्वारा शोभिता होकर त्रिमूर्ति हो जाती है (अर्थात् कृ+लृ+ई) यह नादविन्दु युक्त होकर कलीं रूपी कामबीज द्वारा त्रैलोक्य को मोहित करने में समर्थ है ॥२१॥

क्षतजस्थो व्योमवक्त्रो धूम्रभैरव्यलङ्घकृतः ।

नादविन्दुसुशोभाद्यं मायालजाद्वयं स्मृतम् ॥ह्री०॥२२॥

व्योमवक्त्र अर्थात् ह कार तथा क्षतज अर्थात् र कार, यह दो वर्ण जब धूम्रभैरवी रूपी ई कार द्वारा शोभित होकर नादविन्दु से युक्त हो जाते हैं, तब

ही मन्त्र का गठन होता है । इसे माया बीज अथवा लज्जाबीज कहा गया है ॥२२॥

व्योमास्यच्च विदारीस्थं नादविन्दु विराजितम् ।
कूर्चकालं क्रोधबीजं जानोहि वीरवन्दिते ॥ हुँ ॥२३॥

व्योमास्य ह कार तथा विदारी अर्थात् उकार, इन दो वर्णों को ध्रुभैरवीं (ईं) के साथ युक्त करके नादविन्दु के साथ युक्त करना चाहिये । यह हुँ मन्त्र में परिणत हो जाता है । हे वीरों द्वारा वन्दिता देवी ! इस मन्त्र को क्रोधबीज कहते हैं । यह काल के प्रभाव को भी दूर कर देता है ॥२३॥

व्योमास्यः कालरात्र्याद्यो वर्मविन्दिन्दु संयुतः ।

कथितं वचनं बीजं कुलाचार प्रियेऽप्ले ॥ हूँ ॥२४॥

व्योमास्य ह कार तथा कालरात्रि अर्थात् ऊकार । व्योमास्य ह कार जब काल रात्रि रूप ऊ कार से विभूषित होकर चन्द्रविन्दूरूप वर्म से आच्छादित होता है, तब हूँ बीजमन्त्र का गठन हो जाता है । हे कुलाचारप्रिय स्वच्छरूपिणी ! इसे वायुबीज कहते हैं ॥२४॥

व्योमस्यं क्षतजारुङ् डाकिन्या नादविन्दुभिः ।

ज्योतिर्मन्त्रं समाख्यातं महापातकनाशनम् ॥ हौं ॥२५॥

व्योमास्य ह कार, क्षतज रुकार, डाकिनी अर्थात् औ कार । हकार जब रेक के साथ युक्त होकर औ कार तथा नादविन्दु से संयुक्त होता है, तब ज्योतिर्मन्त्र हौं प्रकट हो जाता है । यह सभी प्रकार के महान् पातकों को विघ्वस्त कर देता है ॥२५॥

नादविन्दु समायुक्तां समादायोग्रभैरवोम् ।

भौतिकं वाग्भवं बीजं विद्धि सारस्वतं प्रिये ॥ ऐं ॥२६॥

हे प्रिये ! उग्रभैरवी अर्थात् ऐ कार जब नादविन्दु से संयुक्त होता है, तब ऐं का गठन हो जाता है । यह सरस्वती बीज है ॥२६॥

प्रलयाग्निर्महाजालः ख्यात अस्त्रमनुः शिवै ।

रक्तक्रोधीशमीमाख्योऽङ्कुशोऽयं नादविन्दुमात् ॥ कौं ॥२७॥

हे शिवे ! प्रलयकालीन अग्निज्वाला के समान भयंकर यह द्रौं मन्त्र रक्ते
क्रोधीश रूप से नादविन्दु समायुक्त होकर श्यामाबीज कहलाता है ॥२७॥

द्विठः शिवो वन्हिजाया स्वाहा ज्वलनवल्लभा ॥ स्वाहा ॥

संयुक्तं धूम्रभैरव्या रक्तस्थं वलिभोजनम् ।

नादविन्दुसमायुक्तं किञ्चिणीबीजमुत्तमम् ॥ द्रौं ॥२८॥

सुन्दररूप से मर्यादा के साथ स्वाहा मंत्र का उच्चारण करके अग्नि में हवि
को छोड़ा जाता है । अतः यह 'स्वाहा' अग्नि को वल्लभा अथवा जाया है । धूम्र-
भैरवी का ई कार वलिभोजन अर्थात् द कार जब नाद विन्दु संयुक्त होता है, तब
उत्तम किञ्चिणी बीज का गठन होता है यही द्रौं बीज है ॥२८॥

नादविन्दु समायुक्तं रक्तस्थं वलिभोजनम् ।

करालास्यासनोपेतं विशिकास्थं महामनुम् ॥ द्रां ॥२९॥

नादविन्दु समायुक्त वलिभोजन (द) आ से युक्त होकर द्रां मन्त्ररूप में
परिणत होता है । इसे विशिकारूप महामन्त्र कहते हैं । यही करालास्यरूप अर्थात्
आ से संयुक्त होकर द्रां बीज बन जाता है ॥२९॥

धूमोज्वल करालाग्नि उर्ध्वकेशीन्दुविन्दुभिः ।

युगान्तकारकं बीजं वीरपत्तिं प्रकाशितम् ॥ फें ॥३०॥

हे वीरपत्ती ! धूम्र के द्वारा उज्वल करालाग्नि जब चन्द्र तथा विन्दु के द्वारा
उर्ध्वकेशी हो जाता है, तब युगान्तकारक फें बीज प्रकाशित होता है ।
(करालाग्नि = फकार, उर्ध्वकेशी = ए कार, इन्दुविन्दु = ") ॥३०॥

विदार्या नेक्षितो गुह्यो बलिभुक् क्षतजोक्षितः ।

नादविन्दु समायुक्तो विज्ञेयः पिशिताशनः ॥ द्रूं ॥३१॥

बलिभुक् 'द' और क्षतजोक्षित र जब क्रमशः उकार और नादविन्दु हो जाता है,
तब भीषण बीज का गठन होता है ॥३१॥

संहारिणा स्थितञ्चोद्दें केशिनन्तु कपर्दिनम् ।

नादविन्दु समायुक्तं बीजं वैतालिकं स्मृतम् ॥ पृं ॥३२॥

संहारी ल कार एवं उर्ध्वकेशी ए कार युक्त कपर्दी पकार नादविन्दु से
मिलित होकर वैतालिक बीज पूरे रूप में परिणत हो जाता है ॥३२॥

सनादविन्दु क्रोधीशं गुह्ये संहारिणी स्थितम् ।

कम्पिनीबीजमित्युक्तं चण्डिकारूपं मनोहरम् ॥कृं॥३३॥

क्रोधीश ककार तथा संहारिणी ल कार । क के निम्न में ल तथा नादविन्दु
युक्त होने से मनोहर चण्डिकारूप कम्पिनी बीज गठित होता है ॥३३॥

कपदिनं समादाय क्षतजोक्षित संस्थितम् ।

संयुक्तं धूम्रभैरव्या ध्वांडक्षोऽयं नादविन्दूमान् ॥प्रीं॥३४॥

कदर्पी प, क्षतजोक्षित र तथा धूम्रभैरवी ई कार, यह सब (रेफ के साथ)
संयुक्त होकर नादविन्दुमिलित रूप से सुन्दर प्रीं मन्त्र का गठन करते हैं ॥३४॥

कपालोद्यमादाय महाकालेन मणिंडतम् ।

सनाद स्तनमित्युक्तं चण्डिकारूपं पयोधरम् ॥ठं ठं॥३५॥

कपाली = ठ, महाकाल = म । मकार तथा दो छकार को नादविन्दुयुक्त
करने से यह मंत्र ठं ठं प्रकट होता है, जो चण्डिका का स्तनरूप कहा गया है ।

करालाग्निस्थितो धूमधवजो गुह्ये सविन्दुमान् ।

संयुक्तो धूम्रभैरव्या स्मृता केत्कारिणी प्रिये ॥स्फ्रीं॥३६॥

करालाग्नि फ, धूमधवज स, धूम्रभैरवी ई के संयुक्तीकरण से रेफ युक्त
नादविन्दु समन्वित केत्कारिणी मंत्र कहा जाता है ॥३६॥

क्षतजो क्षितमारुणं नादविन्दुसमन्वितम् ।

विदारीभूषितं देवौ बीजं वैवस्वतात्मकम् ॥३७॥

हे देवी ! धूतजोक्षित र, विदारी उ तथा नादविन्दु समन्वित यह रु मन्त्र
वैवस्वत सूर्यस्वरूप मंत्र कहा गया है ॥३७॥

॥ इति दक्षिणाम्नाये कंकालमालिनीतन्त्रे प्रथमः पटलः ॥

॥ दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनीतन्त्र का प्रथम पटल समाप्त ॥

द्वितीयः पटलः

श्रीपार्वत्युवाच—

देवदेव महादेव नीलकण्ठ तपोधन ।

योनिमुद्रां महादेव तत्वत्रयं परात्परं ।

एतदेव महादेव कथ्यतां मे पिनाकघृक् ॥१॥

श्री पार्वती कहती है—हे देवाधिदेव महादेव ! हे तपोधन नीलकण्ठ ! परज्ञान की अपेक्षा उत्कृष्ट तत्वत्रय—जैसे इच्छा-ज्ञान-क्रिया, अथवा परा-पश्यन्ति मन्त्रमा जिसमें है, मैं उस योनिमुद्रा को जानना चाहती हूँ । हे पिनाकधारी ! कृपया वर्णन करिये ॥१॥

ईश्वर उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेशि दासोऽहं तव सुब्रते ।

अतिगुह्यं महक् पुण्यं तत्वत्रयं वरानने ॥२॥

सारात् सारं परं गुह्यमतिगोप्यं सुनिश्चितम् ।

शंड्योपि जायते देवि कथं तत् कथयाम्यहम् ॥३॥

ईश्वर कहते हैं—हे शोभनब्रतशालिनी देवेशी ! मैं तुम्हारा दास हूँ । हे वरानने ! अत्यन्त गोपनीय होने पर भी इस पवित्र तत्वयुक्त योनिमुद्रा का वर्णन करता हूँ । सुनो !

यह समस्त तंत्रों का सार, धत्यन्त गोपनीय है । इस मुद्रा का वर्णन केसे करूँ, यह संशय उत्पन्न हो रहा है ॥२-३॥

कथयामि महेशानि आज्ञया तव भाविनी ।

न चेत्तत् कथ्यते देवि तव क्रोधः प्रजायते ॥४॥

हे भाविनी ! हे महेशानी ! मैं तुम्हारे आदेश के अनुसार इसका तत्वोपदेश करता हूँ । हे देवी ! यदि मैं इसका उपदेश नहीं करता, उस स्थिति में तुम्हारे अन्दर क्रोध की उत्पत्ति होने लगेगी ॥४॥

त्वया क्रोधे वृते देवि हानिः स्यान्मम कामिनी ।

मन्त्रार्थं मन्त्रं चैतन्यं धर्मर्थिकामदं प्रिये ॥५॥

हे देवी ! हे कामिनी ! तुम्हारे क्रोध से मेरी क्षति होंगी । हे प्रिये ! धर्म-अर्थ-कामप्रद मंत्र का अर्थ, मंत्र चैतन्यादि और ॥५॥

योनिमुद्रा महेशानि तृतीयं ब्रह्मरूपिणी ।

अज्ञात्वा यो जपेन्मत्रं नहि सिद्धिः प्रजायते ॥६॥

ब्रह्मरूपिणी योनिमुद्रा, इन तीनों को जो सावक विना जाने मंत्रजप करता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती ॥६॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वणो विनश्यति ।

योनिमुद्रा महेशानि साक्षात्मोक्षप्रसाधिनी ॥७॥

तव योनिर्महेशानि प्रिया मम यथा प्रिये ।

सततं परमेशानि दासोऽहं तव योनिना ॥८॥

हे महेशानी ! जो मुद्रा को जानकर भी उसका उपयोग नहीं करता, वह विनाश प्राप्त करता है । हे महेशानी ! योनिमुद्रा साक्षात् मोक्ष प्रदायिनी है ।

हे प्रिये ! जैसे तुम मुझे प्रिय हो, उसी प्रकार तुम्हारी योनि भी मुझे प्रिय है । तुम्हारी योनि के कारण ही मैं सर्वदा तुम्हारा दास बना रहता हूँ ॥७-८॥

तव योनिप्रसादेन मृत्युं जित्वा वरानने ।

मृत्युञ्जयोऽहं देवेशि सततं कमलानने ॥९॥

तव योनौ महेशानि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।

तिष्ठन्ति सततं देवि ब्रह्माद्यास्त्रिविवौक्सः ॥१०॥

हे वरानने ! तुम्हारी योनि की कृपा से मैंने मृत्युजय किया है । हे कमलानने ! मैं सर्वदा मृत्युजय के नाम से प्रसिद्ध हूँ ।

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि में सचराचर ब्रह्माण्ड स्थित है । ब्रह्माप्रभृति त्रिदेव भी तुम्हारी योनि में ही निवास करते हैं ॥९-१०॥

मयूरस्य महेशानि पुच्छे कृत्वा च अङ्गूतं ।

योन्याकारं महेशानि दष्ट्वा कृष्णः शुचिस्मिते ।

शिवे वृत्वा वरारोहे त्रैलोक्यं वशमानवेत् ॥११॥

हे महेशानी ! योनि के आकार का मयूर पुच्छ का चित्रण देखकर कृष्ण ने मयूर पुच्छ को निर पर धारण किया । हे गुविस्मिते ! वरारोहे ! इस प्रकार उन्होंने त्रैलोक्य को वशीभूत किया था ॥११॥

तव योनि महेशानि भावयामित्यहनिशम् ।

तत्रैव दृष्ट्वा ब्रह्माण्डं नान्यं पश्यामि कामिनी ।

कर्पुरफलकोद्धूतं तव योनिपुरं परम् ॥१२॥

हे महेशानी ! मैं अहोरात्र तुम्हारी ही योनि का व्यान करता रहता हूँ । हे कामिनी ! उसां में सम्स्त ब्रह्माण्ड को देखने के पश्चात् अन्य कुछ भी देखना शेष नहीं रह जाता । मानो तुम्हारा योनिमण्डल कर्पुर फलक से उद्भूत हूँ ॥१२॥

तव योनिमहेशानि तत्त्वत्रय सुपूजितम् ।

रेतोरजःसमायुक्तं साक्षात्मन्मथ मन्दिरम् ॥१३॥

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि तत्त्वत्रय के द्वारा (पृथ्वी, जल तथा तेजः द्वारा), मद्य-मांस-मैथुन रूप चित्रत्व द्वारा सुन्दर रूपेण पूजिता है । वह शुक एवं रजः से समन्वित और साक्षात् कामदेव का मन्दिर है ॥१३॥

न जाने कि कृतं कर्म कालिके कमलेक्षणे ।

तव बोनी महादेवि अतएव वरानने ।

योनिमुद्रां योनिबोजं सततं परमेश्वरो ॥१४॥

हे कमलनयने कालिके ! पता नहीं किस कर्म के कलस्त्वय तुम्हारा योनि-सम्पर्क मिला है । हे वरानने महादेवी ! हे परमेश्वरी ! इसी कारण मैं सर्वदा योनिमुद्रा तथा योनिबीज की सावना करता रहता हूँ ॥१४॥

अहं मृत्वञ्जयो देवि योनिमुद्राप्रसादतः ।

योनिवीज महेशानि निगदामि शूणु प्रिये ॥१५॥

प्रथमे परमेश्वानि योगिनीं रुद्रोयोगिनीम् ।

उद्धूत्य वह्यत्वेन बलबीजयुतं कुरु ।

विन्हर्द्धंचन्द्रसंयुक्तं बोजं त्रैलोक्यमोहनम् ॥१६॥

हे परमेशानी ! हे प्रिये ! मैं योनिमुद्रा के ही प्रभाव से मृत्युञ्जय हो सका हूँ । मैं योनिबीज का वर्णन करता हूँ । सुनों ।

हे परमेशानी ! सर्वं प्रव्रत्तं योगिनी तथा रुद्रयोगिनी बीज का उद्धार करे । उसमें बलबीज को युक्त करे । उसको चन्द्रविन्दु युक्त करने पर त्रैलोक्यमोहन योनिबीज प्रकट होता है । ॥१५-१६॥

बध्वा तु योनिमुद्रां वै पूर्वोक्तकूमृतः प्रिये ।

योनिबीजं महेशानी अष्टोत्तरशतं जपेत् ॥१७॥

अष्टोत्तरशतं ज्ञात्वा दक्षफलं लभते प्रिये ।

माहात्म्यं तस्य देवेशी बक्तुं को वा क्षमो भवेत् ॥१८॥

हे महेशानी ! पूर्वोक्त क्रमानुसार योनिमुद्रावन्धन द्वारा इस योनिबीज का १०८ जप करे । इस जप के द्वारा जो फल मिलता है, उसका माहात्म्य कहने में कौन समर्थ है ? ॥१७-१८॥

यः करोति ब्रसन्नात्मा रहस्ये योनिरूपिणीम् ।

ब्रह्माण्डं पूजयेत्तेन ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥१९॥

जो व्यक्ति प्रसन्नचित्त होकर योनिरूपिणी योनिमुद्रा का अनुष्ठान करता है, उस साधक के द्वारा ब्रह्मादि देवगण भी पूजित होते हैं ॥१९॥

तव योनिर्महेशानि परब्रह्मस्वरूपिणी ।

तव योनिर्महेशानि भवस्य मोहिनी प्रिये ॥२०॥

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि परब्रह्मस्वरूपिणी है । हे प्रिये । तुम्हारी योनि संसार को मुग्ध कर देती है ॥२०॥

तव योनिर्महेशानि सिद्धिसूत्रेण वेष्ठयेत् ।

सिद्धिसूत्रं महेशानि त्रित्रिकारं वरानने ॥२१॥

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि का सिद्धसूत्र के द्वारा वेष्ठन करे । हे वरानने । यह सिद्धिसूत्र तीन प्रकार का होता है ॥२१॥

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना त्रितयं तथा ।

सदानन्दमयीं योनि नानासुखविलासिनीम् ॥२२॥

वह मिद्धिसूत्र है इड़ा, पिगला तथा सुबुम्ना ! यह योनि न ना सुख तथा विलास युक्ता है और सर्वदा आनन्दमयी है ॥२२॥

शृङ्गारसमये देवि नान्तं गच्छामि पार्वती ।

मम लिङ्गो महेशानि भिनकित सकलं जगत् ॥२३॥

हे देवी ! रमणकाल में मैं उसका अन्त नहीं पा सकता । हे महेशानी ! मेरा लिंग समस्त जगत् को विदीर्ण कर देता है ॥२३॥

तथापि परमेशानि नान्तं गच्छामि कामिनी ।

तव योनिर्महेशानि न जाने कीदृशीं गतिम् ॥२४॥

हे कामिनी ! इतने पर भी मैं योनि का अन्त नहीं पा सकता । हे परम-
शानी ! मैं नहीं जानता कि तुम्हारी योनि कैसी है ? ॥२४॥

तव योनिर्महेशानि आद्या प्रकृतिरूपिणी ।

सदा कुण्डलिनीं योनि महाकुण्डलिनीं पराम् ॥२५॥

यः सदा परमेशानि योनि दृष्ट्वा वरानने ।

जपेद्वीजं वरारोहे भगाख्यं भगरूपिणीम् ॥२६॥

योनि वध्वा महेशानि भग वीजेन पार्वतो ।

अष्ठोत्तरशतं जप्त्वा मम तुल्यो भवेत् प्रिये ॥२७॥

तव योनौ महेशानि रमणं यत्नतश्चरेत् ।

तस्या रमणमात्रेण ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

स एव धनवान् वाग्मी वागीश समतां व्रजेत् ॥२८॥

हे परमेशानी ! तुम्हारी योनि आद्या प्रकृतिरूपा, कुण्डलिनी तथा महा-
कुण्डलिनी रूपा है । साधक को योनिदर्शन के साथ-साथ योनिस्वरूप योनिवीज
का जप करना चाहिये ।

हे पार्वती ! योनि वेष्टन द्वारा जो साधक १०८ बार योनिवीज का जाप
करता है, वह साधक मेरे समान हो जाता है ।

हे महेशानी ! तुम्हारी योनि मैं यत्नपूर्वक रमण करना पड़ता है । रमणमात्र
से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपता होती है । वह साधक धनवान्, वाग्मी होकर
बृहस्पति तुल्य हो जाता है ॥२५-२८॥

श्री देव्युवाच—

नीलकण्ठ महादेव रहस्यं कृपया वद ।

यदि नो कश्यते देव बिमुच्चामि तदा तनुम् ॥२६॥

देवी कहती हैं—हे नीलकण्ठ महादेव ! कृपया रहस्य वर्णन करिये । अन्यथा मैं शरीर का त्याग कर दूँगी ॥२९॥

ईश्वर उवाच—

श्रृणु पार्वति कृष्णांङ्गी खंजनाक्षि सुलोचने ।

गोपनीयं रहस्यं हि सर्वकामफलप्रदम् ॥३०॥

ईश्वर कहते हैं—हे कृष्ण अंगोवाली ! हे सुलोचने ! हे खंजन जैसे नेत्रोंवाली ! मैं समस्त मनोरथों को पूरा करनेवाला यह गोपनीय रहस्य अवश्य कहूँगा ॥३०॥

तिस्त्रः कोट्यरत्द्वेन शरीरे नाडिका मताः ।

तासु मध्ये दशा प्रोवत्सास्तासु तिस्त्रो व्यवस्थिताः ॥३१॥

मानव शरीर में साढ़ेतीन करोड़ नाडियाँ विद्यमान हैं । उनमें दस तथा दस में भी तीन ही प्रधान हैं ॥३१॥

प्रधाना मेरुदण्डाम्बे चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।

मज्जयित्वा सुषुम्नायामहं योगी सुरेश्वरी ॥३२॥

षट्चक्रे परमेशानि भावयेद् योनिरूपिणीम् ॥३३॥

मेरुदण्ड के मूल में चन्द्र-सूर्य-अग्निरूपिणी इडा-पिंगला तथा सुषुम्ना विद्यमान हैं । परमेशानी, सुरेश्वरी ! मैं सुषुम्ना में स्नान करके योगी हुआ हूँ । शरीर में जो षट्चक्र विद्यमान है, उनमें योनिरूपा भगवती का ध्यान करना चाहिये ॥३२-३३॥

प्रथमं परमेशानि आधारयुगपत्रकम् ॥३४॥

वादिसात्यैश्चतुर्वर्णं द्युतहेमसमप्रभं ।

तडित्कोटिप्रभाकरं स्थानं परमदुर्लभम् ॥३५॥

चारो दलो में (मूलाधार के) यथाक्रमेण वं-श-ष-स शोभायमान है । यह आधार चक्र है । इसके चारो पत्र विशिष्ट पद्मरूपेण विद्यमान है । यह पद्म सुवर्ण के समान कान्तिपूर्ण है । इसकी कान्ति कोटि विद्युत के समान है । यह परमदुर्लभ स्थान है ॥३४-३५॥

तत्कर्णिकायां देवेशि त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।

इच्छाज्ञानं क्रियारूपं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् ॥३६॥

हे देवेशी ! उसकी कर्णिका में एक सुन्दर त्रिकोण है । वह इच्छा-ज्ञान-क्रिया किंवा ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक है ॥३६॥

मध्ये स्वयम्भुलिङ्गञ्च कुण्डली वेष्ठितं सदा ।

त्रिकोणार्थं तु देवेशि लङ्घारं चिन्तयेतथा ॥३७॥

उसक मध्यम कुण्डला से आवोष्टन स्वयम्भुलग अस्थत है । हे देवेशा ! इस त्रिकोण मध्य में लं मन्त्र का चिन्तन करे ॥३७॥

ब्रह्माणं तत्र संचिन्त्य कामदेवञ्च चिन्तयेत् ।

बीजं तत्रेव निश्चिन्त्यं पानावादानमेव च ॥३८॥

षट् च गमनं पायौ विसर्गं नसि कामिनी ।

ब्राणं संचिन्त्य देवेशि महेशी प्राणवल्लभे ॥३९॥

ब्रह्मा की भावना करे । कामदेव का चिन्तन करे । यहाँ पर बीज का भी चिन्तन करना चाहिये । हे देवेशी ! प्राणवल्लभे ! कामिनी ! चरण से गमन, पायु से विसर्जन तथा नासिका से गंध का चिन्तन करे ॥३८-३९॥

डाकिनीं परमाराध्यां शक्तिञ्च भावयेततः ।

एतानि गिरिजे मातः पृथ्वीं नीत्वा गणेश्वरी ॥४०॥

हे गणेश्वरी ! गिरिजे ! मातः ! परमाराध्या डाकिनी शक्ति की भावना करे और पूर्वोक्त चिन्तित गमन, विसर्जन तथा गंध रूप विषयों को पृथ्वी तत्व में ले जाये ॥४०॥

तन्मध्ये लिङ्गरूपं हि कुण्डली वेष्ठितं प्रिये ।

तत्र कुण्डलिनीं नीत्वां परमानन्दरूपिणीम् ॥४१॥

तत्र ध्यानं प्रकुर्वेति सिद्धिकामो वरानने ।

कोटिचन्द्र प्रभाकारां परब्रह्म स्वरूपिणीम् ॥४२॥

चतुर्भुजां त्रिनेत्राभ्युच वराभयकरस्तथा ।

तथा च पुस्तकं वीणां धारिणीं सिंहवाहिनीम् ॥४३॥

हे प्रिये ! त्रिकोण के मध्य में मूलाधार में लिंगरूप विराजमान रहता है । यहीं नित्या-परमानन्द स्वरूपिणी कुण्डलिनी भी विराजमान है । हे वरानने ! यहीं सिद्धिकामी साधक सर्वदा ध्यान करे । कोटिचन्द्र के समान जिसकी प्रभा है, ऐसी परब्रह्मरूपिणी कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, चर-अभय, प्रदायिनी, सिंहवाहिनी, वीणा पुस्तक धारिणी का ध्यान करे ॥४१-४२॥

मठ्ठन्ति स्वाक्षरं भीमां चामारूपभरां पदाम् ॥४४॥

नाना उत्कृष्ट रूपधारिणी, भीमदर्शना देवी मुन्दर आसन पर शोभायमान रहती है ॥४४॥

पूर्वोक्तां पृथिवीं धन्यां गन्धे नीत्वा महेश्वरी ।

आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे ॥४५॥

ह नगेन्द्रजे महेश्वरी ! पूर्वोक्त पृथ्वीतत्व को उसके विषय गन्ध में जीत करके (३५) मंत्र के द्वारा जीवात्मा का आकर्षण करे ॥४५॥

कुण्डलिन्या सह प्रेमे गन्धमादाय साधकः ।

सोऽहमिति मनुना देवी स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत् ॥४६॥

तत्पदम् लिंगमूलस्थं सिन्दूराभञ्च षड्दलम् ।

स्फुरद्विद्विद्विमसांकाशौर्वादिलान्तैः सुशोभितम् ॥४७॥

हे देवी ! कुण्डलिनी देवी के साथ गन्ध को ग्रहण करके सोऽहं मन्त्र के द्वारा स्वाधिष्ठान में प्रवेश करे । यह स्वाधिष्ठान पञ्च लिंगमूल में विराजित रहता है । यह षड्दल है और सिन्दूरसम्प्रभ है । दीप्तिमान ब्रह्माक के लगान वं शं मं यं रं लं वर्ण द्वारा सुशोभित है ॥४६-४७॥

तत्कर्णिकायां वरुणं तत्रापि भावयेद्द्विष्ट ।
युवानां राकिनीं शक्तिं चिन्तयित्वा वरानने ॥४८॥

उसकी कर्णिका में वरुण विराजित हैं । उस स्थल में विष्णु का चिन्तन करें ।
हे वरानने ! यहां पर राकिनीशक्ति का चिन्तन करना चाहिये ॥४८॥

रसनेन्द्रियं पुष्पस्थां जलंञ्च कामलालसे ।
एतानि गन्धञ्च शिवे रसे नीत्वा विनोदिनीम् ॥४९॥
जीवात्मानं कुण्डलिनीं रसञ्च मणिपूरके ।
नीत्वा परमयोगेन तत्पदं दिग्दलं प्रिये ॥५०॥

इस स्वाधिष्ठान में कर्मेन्द्रिय ही रसनेन्द्रिय जल एवं उपस्थ रूप में विराजित हैं । इन दोनों को तथा पुर्वकर्पित गन्ध को रस में मिलाये और उसे लेकर मणिपुर की ओर चले । मणिपुर पद्म में द्वितीय चक्रस्थ रस एवं कुण्डलिनी रूप जीवात्मा को ले जाये । हे प्रिये ! मणिपुर पद्म में १० दल है ॥४९-५०॥

नीलवर्णं तडिद्रूपं डादिफान्तैश्च मणिडतम् ।
तत्कर्णिकायां सुश्रोणि वह्नि संचिन्त्य साधकः ॥५१॥

यह पद्म नोलवर्ण है जो विद्युत के समान है । यहां ड से लेकर फ पर्यन्त वर्ण हैं (ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) । हे सुश्रोणी ! इसकी कर्णिका में साधक को वह्निवीज रं का चिन्तन करना चाहिये ॥५१॥

तत्र रुद्रः स्वयं कर्त्ता संहारे सकलस्य च ।
लाकिनी शक्तिं संयुक्तं भावयेतं मनोहरे ॥५२॥
तत्र चक्षुरिन्द्रियञ्च कृत्वा तेजोमयं यजेत् ।
एतं रसञ्च सुभगे रूपे नीत्वा महाभगे ॥५३॥

यहाँ सर्वलोकसंहारकर्त्ता रुद्र लाकिनी शक्ति के साथ विराजित रहते हैं । हे मनोहरे ! उन लाकिनी शक्तियुक्त रुद्र की भावना करें । यहाँ तैजसचक्षुरीन्द्रिय तथा उसका विषय रूप शोभायमान है । हे सुभगे ! हे महाभगे ! स्वाधिष्ठान स्थित रस को रूप में मिलाकर अनाहत में ले जाना चाहिये ॥५२-५३॥

जीवात्मानं कुण्डलिनी रूपच्चानाहते नयेत् ।
बन्धूकपुष्पसंङ्काशं तत्पद्मं द्वादशारकम् ॥५४॥

इस अनाहत पद्म में कुण्डलिनीरूप जीवात्मा को ले जाना चाहिये । इस अनाहत पद्म का रंग बन्धूक पुष्प के समान है और इस पद्म में १२ दल हैं ॥५४॥

कादिठान्तैः स्फुरद्दूर्णैः शोभितां हरवल्लभाम् ।
तत्कणिकायां वायुच्चाजीवस्थान निवासिनम् ॥५५॥
तत्र योनेर्मण्डलञ्च वाणिलिङ्गविराजितम् ।
काकिनी शक्तिसंयुवतं तत्र वायोस्त्वगिन्द्रियम् ॥५६॥

इस अनाहत चक्र में ककारादि ठकारान्त (कं खं गं घं ङं चं छं जं झं अं टं ठं) देवीप्यमान वर्ण समष्टि सुशोभित है । उसकी कणिका में जीवस्थान निवासी वायुतत्व विद्यमान है ॥५५-५६॥

यहाँ वाणिलिंग विराजित है । वह एक योनिमण्डल में स्थित है । यहाँ काकिनी शक्ति तथा त्वक् इन्द्रिय और उसका विषय वायुतत्व विद्यमान है ॥५५-५६॥

एतं रूपञ्च रूपोज्य स्वर्गे रमण कामिनी ।
जीवकुण्डलिनीं स्पर्शं विशुद्धौ स्थापयेत्ततः ॥५७॥
धूम्रवर्णं कण्ठपद्मं पोडशस्वरमण्डितम् ।
तत्कणिकायामाकाशं शिवच्च काकिनीयुतम् ॥५८॥

हे स्वर्ग में रमण की कामनावाली ! इस बार विशुद्धारूप पद्म को पूर्वोक्त त्वगीन्द्रिय के विषय स्पर्श से युक्त करके, वहां कुण्डलिनी रूप जीव की स्थापना करे । यह पद्म धूम्रवर्ण तथा १६ अक्षरों के द्वारा शोभित है । इसकी कणिका में आकाशतत्व तथा काकिनी शक्तियुक्त शिव विराजित हैं ॥५७-५८॥

वाचं श्रोत्रच्च आकाशो, संस्थाप्य नगनन्दिनी ।
एतानि स्पर्शं शब्दे च नीत्वा शाङ्करि मत्प्रये ॥५९॥
जीवं कुण्डलिनीं शब्दच्चाज्ञापत्रे निवापयेत् ।
नेत्रपद्मं शुक्लवर्णं द्विदलां ह क्ष भूषितम् ॥६०॥

हे पर्वतनन्दिनी ! प्रिये ! शांकरी ! वहां बाक् तथा श्रोत्रेन्द्रिय की संस्थापना करे । वहां शब्द के साथ स्पर्श का योग कराये । कुण्डलिनी रूपी जीव को तथा शब्द को आज्ञाचक्र में ले जाये । वहां जो पद्म है, वह नेत्रपद्म (आज्ञाचक्र) है, उसका वर्ण है शुक्ल । वहां ह तथा आ ये दो शब्द विराजित हैं ॥५९-६०॥

तत्कर्णिकायां त्रिकोणञ्चेद् वाणिलिङ्गच्च सङ्कृतम् ।

मनश्चात्र सदाभाति डाकिनी शक्ति लाभितं ॥६१॥

वुद्धि प्रकृत्यहङ्कारालक्षितं तेजसा परम् ।

जीवात्मानं कुण्डलिनीं मनश्चापि महेश्वरी ॥६२॥

उसकी कणिका में वाणिलिंग संयुक्त एक त्रिकोण है । वहां डाकिनी शक्ति युक्त मन सदा शोभित रहता है । हे महेश्वरी ! वुद्धि, प्रकृति तथा अहंकार द्वारा लक्षित उत्कृष्ट तैजस मन को तथा जीवात्मा रूप कुण्डलिनी को युक्त करे ॥६१-६२॥

सहस्रारे महापद्मे मनश्चापि नियोजयेत् ।

सहस्रारं नित्यपद्मं शुक्लवर्णमधोमुखम् ॥६३॥

आज्ञा चक्र से उपर जो सहस्रार है, उसका वर्ण शुक्ल है । वह अधोमुखी होकर विराजमान है । उस सहस्रार में मनोनिवेश करना चाहिये ॥६३॥

अकारादि क्षकारात्तेः स्फुरद्वर्णविराजितम् ।

तत्कर्णिकायां देवेशी अन्तरात्मा ततो गुरुः ॥६४॥

सूर्यस्य मन्डलञ्चैव चन्द्रमन्डल मेव च ।

ततो बायुर्महानादो ब्रह्मरन्ध्रं ततः समृतम् ॥६५॥

अकार से क्षकार पर्यन्त देवीपूज्यमान समस्त वर्ण समष्टि के द्वारा यह व्याप्त है । हे देवेशी ! उसकी कणिका में अन्तरात्मा एवं गुरु का आसन है ।

उसके उपर सूर्य एवं चन्द्र का मण्डल विराजित रहता है । उसके भी ऊपर महानादयुक्त बायु है । उसके उपर ब्रह्मरन्ध्र शोभायमान है ॥६४-६५॥

तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गच्च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।

तदूर्ध्वं शहिनीं देवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥६६॥

तस्याधःस्ताच्च देवेशी चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।

त्रिकोणं तत्र चंचिन्तय कैलासमत्र भावयेत् ॥६७॥

इस ब्रह्मरंग में नित्यानन्दमय निरञ्जन विसर्ग रहता है । किसी के मत से ब्रह्मरंग के उर्ध्वभाग में यह विसर्गमण्डल शोभित है । उसके उपर शंखिनी देवी का स्थान है । यह देवी सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी शक्ति है । हे देवेशी ! इसके निम्न प्रदेश में चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित त्रिकोण है । उसका चिन्तन करते हुये, उसी में कैलास की भावना करे ॥६६-६७॥

इह स्थाने महादेवी स्थिरचित्तो विवाय च ।

जीवजीवी गतव्याधिर्नपुनर्जन्मसंभवः ॥६८॥

अत्र नित्योदिता वृद्धि क्षयहीना अमाकला ।

तन्मध्ये कुटिला निर्वणाख्या सप्तदशी कला ॥६९॥

निर्वणाख्यान्तर्गता बहिरूपा निरोधिका ।

नादोऽव्यक्तस्तदुपरि कोट्यादित्यसमप्रभा ॥७०॥

हे महादेवी ! पूर्वोक्त स्थान में अपने चित्त को स्थिर करे । यहां साधक विगत व्यावि हो जाता है । उसका जीव-जीवीभाव का सम्बन्ध विनष्ट हो जाता है । ऐसे साधक का पुनर्जन्म नहीं होता ।

यहाँ वृद्धिक्षय रहित अमाकला नित्य उदित रहती है । उसी में कुटिल निर्वण नामी सप्तदशी कला विद्यमान है । इस निर्वण नामक सप्तदशी कला के अन्तर्गत ब्राह्मरूप निरोधकारिणी एक कला अवस्थिता है । यहाँ सभी समय अव्यक्त नाद उत्तित होता रहता है । उसके ही उपर कोटि आदित्य के समान प्रभा विराजित है ॥६८-७०॥

निर्वणशक्तिः परमा सर्वेषां योनिरूपिणी ।

अस्यां शक्तौ शिवं ज्ञेयं निर्विकारं निरंजनम् ॥७१॥

अत्रैव कुट्ठलीशक्तिमुद्ग्राकारा सुरेश्वरी ।

पुनस्तेन प्रकारेण गच्छन्त्याधारपद्मजे ॥७२॥

यही योनिरूपिणी निवाण शक्ति है । इसी में निर्विकार-निरंजन शिव
विराजित रहता है । हे सुरेश्वरी ! यहां मुद्राकारा कुण्डलिनी शक्ति रहती है ।
यह कुण्डलिनी पुनः आधारकमल में (मूलाधार में) चली जाती है ॥७१-७२॥

कथिता योनिमुद्रेयं मया ते परमेश्वरी ।

विना येन न सिद्धेन निहरेत् परमात्मना ॥७३॥

हे परमेश्वरी ! मैंने योनिमुद्रा का वर्णन कर दिया । इसकी सिद्धि के अभाव
में परमात्मा की प्राप्ति दुर्लभ है ॥७३॥

तत्तदिव्यामृतधाराभिलक्षिभाभिर्महेश्वरी ।

तर्पयेददेवतां योगी योगेनानेन साधकः ॥७४॥

कुन्डलोशवित्तसिद्धिः स्याद्वर्णकोटिशतैरपि ।

तस्मात्त्वयापि गिरिजे गोपनीयं प्रयत्नतः ॥७५॥

हे गिरिजे ! लाक्षारस की धारा के समान इस अमृतधारा के द्वारा साधक
योगी सदा आराध्य देव का तर्पण करते रहते हैं । शतकोटि वर्ण द्वारा कुण्डलिनी
शक्ति की सिद्धि होती है । अतएव इसे प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना ॥७४-७५॥

मन्त्ररूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा पट्चक्रमन्डले ।

कन्दमध्यात् सुमधुरं कूजन्ती सततोत्थितम् ॥७६॥

गच्छन्ति ब्रह्मरंध्रेण प्रविशन्तीं स्वकेतनम् ।

मूलाधारे च तां देवीं संस्थाप्य वीरवन्दिते ॥७७॥

पट्चक्रमण्डल में मन्त्ररूपा कुण्डलिनी का ध्यान करने पर कन्दमध्य से सतत
सुमधुर कूजन करते-करते कुण्डलिनी उत्थित होती है ।

हे वीरवन्दिते ! मूलाधार से उत्थान करके ब्रह्मरन्ध्र तक जाकर स्वस्थान
(सहस्रार) में प्रविष्ट हो जाती है । हे देवी ! वहां से कुण्डलिनी को पुनः
प्रत्यावर्तित करते हुये मूलाधार में स्थापित करे ॥७६-७७॥

चित्रिणी ग्रथिता माला जापं ब्रह्मण्डसुन्दरी ।

रहस्यं परमं दिव्यं मन्त्रचैतन्यमीरितम् ॥७८॥

हे ब्रह्माण्डसुन्दरी ! चित्रिणी द्वारा ग्रथिता माला से जष करने पर चैतन्य आधित होता है । यह साथकों का परमदिव्य रहस्य है ॥७८॥

मुद्राचैतन्योर्जनां वर्णनां ज्ञानमेव च ।
मंत्रार्थं कथितं देवी तव स्नेहात् प्रियम्बदे ॥७९॥
अस्य ज्ञानं विना भद्रे सिद्धिनं स्यात् सुलोचने ।
इति ते कक्षितं देवी योनिकीडनमुत्तमम् ॥८०॥

हे प्रियम्बदे ! तुम्हारे स्नेह से परब्रह्म होकर मुद्रा, मन्त्र चैतन्य, वर्ण का ज्ञानोपाय, तथा मंत्रार्थ कहा है ।

हे देवी ! हे भद्रे ! हे सुलोचने ! इस ज्ञान के अभाव में सिद्धि की प्राप्ति असंभव है । अतएव मैंने तुमसे उत्तम योनिकीडा का वर्णन किया ॥७९-८०॥

श्री ईश्वरी उवाच—

सुरासुरजगद्वन्द्य पार्वतीभगसेवक ।
इदनीं श्रोतुमिच्छामि योनेः कवचमुत्तमम् ॥८१॥

श्री ईश्वरी कहती है—हे सुरासुर जगत्वन्दय ! पार्वती के भग का सेवन करने वाले ! मैं उत्तम योनिकवच सुनना चाहती हूँ ॥८१॥

श्री महादेव उवाच—

यद् घृत्वा पठनात् सर्वाः शक्तयो वरदा प्रिये ।
एतस्य कवचस्यापि ऋषिश्च श्री सदाशिवः ॥८२॥
छन्दोगायत्रीदेवता योनिरूपा सनातनी ।
चतुर्वर्गेषु देवेशि विनियोगः शकीर्त्तिः ॥८३॥

श्री ईश्वर कहते हैं—हे प्रिये ! जिसे धारण करने तथा पाठ करने से समस्त आक्लिर्यां वरदा हो जाती है, उस कवच के ऋषि हैं सदाशिव । छन्द गायत्री है और देवता हैं साक्षात् योनिरूपा सनातनी देवी । हे देवेशी ! इसका विनियोग है धर्म, धर्म, काम, मोक्ष ॥८२-८३॥

(योनिकवचम्)

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

(दक्षपादः) मम शिरो रक्षन्तु स्वाहा ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

ॐ मां ॐ आकूटां मम रक्षन्तु स्वाहा मं मां ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

मम हृदयादि दक्षवाहुं रक्षन्तु ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

मम हृदयादि वामवाहुं रक्षन्तु ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

दक्षपादं रक्षन्तु मम ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

वामपादं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा स्वाहा ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

मम हृदयादि नासा रक्षन्तु स्वाहा ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

मम उपस्थिं रक्षन्तु मम सदा स्वाहा ।

ॐ मं मां भिं मीं मुं मूं में मैं मों मौं मं मः

इदं हि योनि कवचं रहस्यं परमाद्भुतम् ॥८४-८८॥

अज्ञात्वा यो जपेत्मन्त्रं सर्वी निष्फलतां ब्रजेत् ।

रहस्यं परमं दिव्यं सावधानावधारय ॥८९॥

मूलाधारे महेशानि जपेद्यस्तु वरानने ।

मूलाधारे महेशानि वरारोहेऽन्तरात्मनि ॥९०॥

जो साधक इस योनिकवच के विना जप करता है, उसके समस्त मंत्र निष्फल हो जाते हैं । अतएव इस परम दिव्य रहस्य को सावधानी पूर्वक स्मरण रखे । है महेशानी ! है वरानने ! जो साधक मूलाधार में अन्तरात्मा के कवच का जप करता है, उसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है ॥८९-९०॥

प्रतिचक्रे महेशानि पठेद् योनि सनातनीम् ।
 चन्द्रसूर्यपरागे च पठेद्वा कवचं प्रिये ॥६१॥
 स्वनारीं रमयेत् यस्तु परनारीयथापि वा ।
 कवचस्य प्रसादेन योनिमुद्रा हि सिद्ध्यति ॥६२॥

हे महेशानी ! प्रत्येक चक्र में सनातनी योनिकवच का पाठ करे । हे प्रिये !
 अन्द्र सूर्य ग्रहण में भी इसका पाठ करना चाहिये ।

स्वकीया नारी अथवा परकीया नारी में रमण करते समय कवच के अनुग्रह
 से योनिमुद्रा सिद्ध हो जाती है ॥९१-९२॥

इदं हि कवच देवी पठित्वा कमलानने ।
 मैथुनं महदार्थानं त्वया सह मया कृतम् ॥६३॥
 कवचस्य प्रसादेन जना यान्ति परां गतिम् ।
 भूर्जपत्रे समालिख्य स्वरम्भु कुसुमेन तु ॥६४॥
 शुक्लेन कुसुमेमापि रोचनालक्तकेन च ।
 स्वर्णस्थां गुटिकां कृत्वा धारयेद् यस्तु मानवः ॥६५॥

हे कमल नेत्रों वाली ! हे देवी ? इस कवच का पाठ करके मैंने तुम्हारे साथ
 महत् आर्थ्यान् युक्त मैथुन किया है ।

कवच के अनुग्रह से लोग परमगति प्राप्त करते हैं । इसे भूर्जपत्र पर कुंकुम से
 लिखे । अथवा शुभ्र पुष्प द्वारा, गोरोचन अथवा अल्कतक से लिखकर सुर्वर्ण
 निर्मित ताबीज में रखकर मनुष्य इसे धारण करे ॥९३-९५॥

इहलोके परत्रच स एव श्रीसदाशिवः ।
 अष्टोत्तरशतच्चास्य प्रपठेत् सिद्धिवांच्छ्या ॥६६॥
 किमत्र बहुनोक्तेन अस्मात् परतरो नहि ।
 नमो योन्यै नमो योन्यै कुण्डलिन्यै नमो नमः ॥६७॥

वह व्यक्ति इस लोक में तथा परलोक में श्री सदाशिवरूप में विश्राजित हो
 जाता है । सिद्धि की आकांक्षा रहने पर प्रतिदिन अष्टोत्तरशतबार योनिकवच
 का पाठ करे ।

अब और क्या कहूँ ? इसकी अपेक्षा श्रेष्ठ कुछ भी नहीं । अतः योनि को बारम्बार नमस्कार करता हूँ । साथ में कुण्डलिनी को भी नमस्कार करता हूँ ॥९६-९७॥

॥ इति दक्षिणाम्नाये कङ्कालमालिनीतन्त्रे द्वितीयः पटलः ॥
॥ दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनी तंत्र का द्वितीय पटल समाप्त ॥

□

तृतीयः पटलः

श्री देव्युवाच—

इदानीं श्रोतुमिच्छामि गुरुपूजनमुत्तमम् ॥१॥

श्री देवी कहती है—अब मैं उत्तम गुरुपूजन की विधि सुनना चाहती हूँ ॥१॥

श्री ईश्वर उवाच—

कथयामि महादेवी अप्रकाशं वरानने ।

निर्गुणच्च परंब्रह्म गुरुरित्यक्षरद्वयम् ॥२॥

महामंत्रं महेशानी गोपनीयं परात्परम् ।

तत्र ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पार्वति सादरम् ॥३॥

सहस्रदलपद्मस्थ मन्तरात्मानमुज्वलम् ।

तस्योपरि नादविन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्वले ॥४॥

चिन्तयेन्निजगुरुं निन्य रजताचलसन्निभम् ।

वीरासनसमासीनं मुद्राभरणभूषितम् ॥५॥

श्री महादेव कहते हैं—हे वरानने ! इस अप्रकाश विद्या को कहता हूँ । गुरु रूपी अक्षरद्वय को निर्गुण परब्रह्मस्वरूप कहा जाता है ।

हे महेशानी ! यह महामंत्र सर्वप्रिक्षा श्रेष्ठ है । इसे गुप्त रखना चाहिये ।
हे पार्वती ! पहले ध्यान प्रक्रिया कहता हूँ । एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो ।

सहस्रदल पद्म के मध्य में ज्योति स्वरूप अन्तरात्मा विद्यमान है । उसके ऊपर नाद एवं विन्दु मध्य में उज्वल सिंहासन पर श्रीगुरु विराजमान हैं ।

रजताचल के समान शुभ्र निजगुरु का नित्य ध्यान करना चाहिये । वहाँ गुरुदेव वीरासन में आसीन हैं और मुद्राभरणादि से विभूषित हैं ॥२-५॥

शुभ्रमाल्याम्बरधरं	वरदाभयपाणिनम् ।
वामोरुशक्तिसहितं	कारुण्येनावलोकितम् ॥६॥
प्रियया सव्यहस्तेन	धृतचारुकलेवरम् ॥७॥
वामेनोत्पलधारिण्या	रक्ताभरणभूषया ।
ज्ञानानन्दसमायुक्तं	स्मरेतन्नामपूर्वकम् ॥८॥

वे शुभ्र माला धारण करके स्थित हैं । उनका परिधान शुभ्र है । हाथों में चरद अभय मुद्रा है । वाम उरु पर शक्ति है । वे करुणाद्व नेत्रों से अवलोकन कर रहे हैं ।

रक्ताभरण भूषिता तथा हाथों में उत्पलधारिणी प्रिया के द्वारा दक्षिण हस्तों से उनका चारु कलेवर धृत है । वामहस्त में उत्पलधारिणी एवं रक्ताभरणभूषिता ज्ञानानन्दप्रदा शक्ति द्वारा वे समायुक्त हैं । ऐसे गुरु को उनके नाम के साथ स्मरण करे ॥६-८॥

मानसैरुपचारैश्च	सम्पूज्य कल्पयेत् सुधीः ॥६॥
गन्धं भूम्यात्मकं	दद्यात् भावपुष्पैस्ततः परम् ।
धूपं वाव्यात्मकं	देवि तेजसा दीपमेव च ॥१०॥
नवेद्यममृतं	दद्यात् पानीयं वरुणात्मकम् ।
अम्बरं मुकुटं	दद्याद् वस्त्रञ्ज्वैव मम प्रिये ॥११॥
चामरं पादुकाच्छत्रं	तथालङ्घारभूषणैः ।
तत्तन्मुद्राविधानेन	सम्पूज्याथ गुरुं यजेत् ॥१२॥
यथाशक्ति जपं कृत्वा	समर्प्य कवचं पठेत् ॥१३॥

सुधी साधक मानसोपचार द्वारा मानसपूजा की कल्पना करे । पृथ्वी तत्व को गंधरूप में, वायु को धूप रूप में, अग्नि को दीप रूप में कल्पित करे । भावरूपी

पूजन करे । अमृत को नैवेद्य रूप में, वरुण को पानीय रूप में, आकाश को मुकुट रूप में तथा आकाश को ही वस्त्र रूप में कल्पित करे । हे प्रिये ! इस प्रकार मानस पूजन करे । पादुका, चामर, छत्र तथा अलंकार प्रभृति की मुद्रा के द्वारा कल्पना करते हुये मानस पूजन करे । मानस पूजा के अनन्तर यथाशक्ति जप करके जप समर्पण करे । अन्त में गुरु कवच पढ़े ॥१२-१३॥

श्री देव्युवाच—

भूतनाथ महादेव कवचं तस्य मे वद ॥१४॥

श्री देवी कहती हैं—हे भूतनाथ महादेव ! इस बार मुझे कवच का उपदेश करिये ॥१४॥

श्रीईश्वर उवाच—

अथ ते कथयामीशो कवचं मोक्षदायकम् ।

यस्य ज्ञानं बिना देवी न सिद्धिर्न च सद्गतिः ॥१५॥

ब्रह्मादयोऽपि गिरिजे सर्वत्र जयिनः स्मृताः ।

अस्य प्रसादात् सकला वेदागमपुरःसराः ॥१६॥

कवचस्यास्य देवेशी क्रृष्णविष्णुरुदाहृतः ।

छन्दो विराङ् देवता च गुरुदेवः स्वयं शिवः ॥१७॥

श्री महादेव कहते हैं—हे देवी ! उनका कवच मोक्षप्रद है । इसके ज्ञान के अभाव में सिद्धि नहीं मिलती । सद्गति भी नहीं हो सकती ।

हे गिरिजे ! इस कवच के प्रभाव से समस्त वेद तथा आगम के तत्त्वज्ञ ब्रह्मा प्रभृति देवगण सर्वत्र विजयी हो जाते हैं । हे देवेशी ! इस कवच के नृष्णि विष्णु हैं । छन्द विराङ् है और इसके देवता है गुरुदेव शिव ॥१२-१७॥

चतुर्वर्गं ज्ञानमार्गं विनियोगः प्रकोपितः ।

सहस्रारे महापद्मे कर्पूरध्वलो गुरुः ॥१८॥

वामोरुगतशक्तिर्यः सर्वतः परिरक्षतु ।

परमाख्यो गुरुः पातु शिरसे मम वल्लभे ॥१९॥

परापराख्यो नासां मे परमेष्ठिमूखं मम ।
कण्ठं मम सदा पातु प्रह्लादानन्द नाथकः ॥२०॥

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग में सहस्रार रूप महापद्म में कर्पूर के समान गुरु ही इस कवच के एकमात्र विनियोग है । जिनके वाम उरु में उपविष्ट शक्ति हैं, वे परमशिव गुरु सर्वत्र रक्षा करें । हे प्रिये ! परमगुरु मेरे मस्तक की रक्षा करें । परापरगुरु मेरी नासिका की, परमेष्ठिगुरु मेरे मुख की रक्षा करें । परम आह्लाद तथा आनन्द के नाथ मेरे कण्ठ की रक्षा करें ॥१८-२०॥

वाहुं द्वौ सनकानन्दः कुमारानन्दनाथकः ।
वशिष्ठानन्दनाथश्च हृदयों पातु सर्वदा ॥२१॥
क्रोधानन्दः कटिः पातु सुखानन्दः पदं मम ।
ध्यानानन्दश्च सर्वाङ्गं बोधानन्दश्च कानने ॥२२॥
सर्वत्र गुरवः पान्तु सर्वे ईश्वररूपिणः ।
इति ते कथितं भद्रे कवचं परमं शिवे ॥२३॥

जो सनकऋषि को आनन्द प्रदान करते हैं, जो कुमार को आनन्द देने वाले नाथ हैं, वे मेरे हृदय का रक्षण करें ।

क्रोधानन्द कटि प्रदेश की तथा सुखानन्द पदद्वय का रक्षण करें । ध्यानानन्द मेरे सर्वाङ्ग की रक्षा करे और बोधानन्द कानन (बन) में मेरा अनुरक्षण करे ।

ईश्वर रूपी समस्त गुरुण समस्त स्थानों में मेरी रक्षा करें । हे भद्रे ! हे परमशिव ! मैंने तुमसे यह गुरुकवच कह दिया ॥२१-२३॥

भवितहीने दुराचारे दद्यान्मृत्युमवाप्नुयात् ।
अस्यैव पठनाद् देवी धारणाच्छ्रुवणात् त्रिये ।
मंत्राः सिद्धाश्च जायन्ते किमन्यत् कथयामि ते ॥२४॥

दुराचारी और भवितहीन व्यक्ति को यह कवच नहीं देना चाहिये, अन्यथा मृत्यु अवश्यमभावी है । हे देवी ! इस कवच को धारण करने तथा अवण करने से मंत्र सिद्धि हो जाती है । और क्या कहूँ ? ॥२४॥

कण्ठे वा दक्षिणे बाही शिखायां वीरवन्दिते ।
 धारणान्नाशयेत् पापं गंगायां कलुषं यथा ॥२५॥
 इदं कवचमज्जात्वा यदि मन्त्रं जपेत् प्रिये ।
 तत् सर्वं निष्फलं कृत्वा गुरुर्पाति सुनिश्चितम् ॥२६॥

हे वीरवन्दिते ! कण्ठ, दक्षिण बाहु अथवा शिखा में इसे धारण करना चाहिये । जैसे गंगास्नान द्वारा समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार कवच के अभाव से समस्त कलुष नष्ट हो जाते हैं ।

हे प्रिये ! इस कवच के बिना जो केवल मात्र मन्त्र जप करते हैं, उनका जप गुरुण नष्ट कर देते हैं, इसे सुनिश्चित मानो ॥२५-२६॥

शिवे रूष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रूष्टे न कश्चनः ॥२७॥

शिव के कुद्ध हो जाने पर गुरु रक्षा करते हैं, परन्तु गुरु के रूष्ट हो जाने पर कोई भी रक्षण नहीं कर सकता ॥२७॥

श्री पार्वत्युबाच—

लोकेन कथ्यतां देव गुरुगीता मयि प्रभो ॥२८॥

श्री पार्वती कहती है—हे देव ! हे प्रभो ! आप कृपया गुरुगीता का उपदेश करिये ॥२८॥

श्री शिव उवाच—

श्रुतु तारिणि वक्ष्यामि गीतां ब्रह्ममयीं पराम् ।
 गुरुस्त्वं सर्वशास्त्राणा महमेव प्रकाशकः ॥२९॥
 त्वमेव गुरुरूपेण लोकानां त्राणकारिणी ।
 गया गंड्जा काशिका च त्वमेव सकलं जगत् ॥३०॥
 कावेरी यमुना रेवा करतोया सरस्वती ।
 चन्द्रभागा गौतमी च त्वमेव कुलपालिका ॥३१॥

श्री शिव कहते हैं—हे भामिनी ! सुनो । मैं तुमसे उत्कृष्ट ब्रह्ममयी गीता का वर्णन करता हूँ । तुम समस्त शास्त्रों की गुरु हो, किन्तु मैं उनका प्रकाशक

हूँ । तुम ही गुरु रूप से समस्त जगत् का ऋण करते हो । गंगा, गया, काशी, कावेरी, नर्मदा, करतोया, सरस्वती, चन्द्रभागा, गौतमी रूप से तुम ही कुल-पालिका भी हो ॥२९-३१॥

ब्रह्माण्डं सकलं देवी कोटिब्रह्माण्डमेव च ।

नहि ते ब्रह्मर्हामि क्रियाजालं महेश्वरी ॥३२॥

उक्तवा उक्तवा भावयित्वा भिक्षुकोऽयं नगात्मजे ।

कथं त्वं जननी भूत्वा वद्युस्त्वं मम देहिनाम् ॥३३॥

हे महेश्वरी ! हे देवी ! समस्त ब्रह्माण्ड, यहाँ तक कि कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड में भी तुम्हारे क्रिया साधन का अन्त नहीं है, उन्हें कहा नहीं जा सकता ।

हे नगात्मजे ! उन सब क्रिया समूह को कहते-कहते, उनकी भावना करते-करते, यह शिव भिक्षुक सा हो गया है । तुम तो समस्त प्राणियों की जननी हो । तुम कैसे मेरी पत्नी होकर विराजित हो ? ॥३२-३३॥

तव चक्र महेशानी अतीतः परमात्मनः ।

इति ते कथिता गीता गुरुदेवस्य ब्रह्मणः ॥३४॥

संक्षेपेण महेशानि प्रभुरेव गुरुः स्वयम् ।

जगत् समस्तमस्थेयं गुरुस्थेयो हि केवलं ॥३५॥

हे महेशानी ! तुम्हारा चक्र परमेश्वर के लिये भी ज्ञानातीत है । इस प्रकार से ब्रह्मस्वरूप गुरु गीता कही गयी है ।

हे महेशानी ! संक्षेप में यह सारतत्व है कि गुरु स्वयं ही प्रभु है । यह समस्त जगत् अस्थिर है । एकमात्र गुरु ही स्थिर है ॥३४-३५॥

तं तोषयित्वा देवेशी नतिभिः स्तुतिभिस्तथा ।

नानाविधद्रव्यदानैः सिद्धिः स्यात् साधकोत्तमः ॥३६॥

हे देवेशी ! उस गुरु को प्रणति तथा स्तुति के द्वारा तथा नानाप्रकार के द्रव्य-दान द्वारा संतुष्ट करना चाहिये । तभी साधकोत्तम सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ॥३६॥

॥ इति श्री दक्षिणाम्नाये कङ्कालमालिनीतन्त्रे तृतीयः पटलः ॥

॥ श्री दक्षिणाम्नाय के कङ्कालमालिनीतन्त्र का तृतीय पटल समाप्त ॥

चतुर्थः पटलः

श्री पार्वत्यबाच—

कथयस्व विघ्नपाक्ष महाकालीमनुं प्रभो ॥१॥

श्री पार्वती कहती है—हे विघ्नपाक्ष, प्रभो ! महाकाली मंत्र का वर्णन करिये ॥१॥

श्री ईश्वर उचाच—

अयातः सम्प्रवक्ष्यामि महाकालीमनुं प्रिये ।

यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वसिद्धिश्वरो भवेत् ॥२॥

श्रिया विष्णुं समः कान्त्या पद्मुखेन समः सुखी ।

शौचेन शुचिना तुल्यो बलेन पवनोपमः ॥३॥

श्री ईश्वर कहते हैं—इसबार मैं महाकाली मंत्र का उपदेश करूँगा । इसके ज्ञानमात्र से साधक सर्वसिद्धीश्वर हो जाते हैं । वे श्री में विष्णु के समान, कान्ति में कात्तिकेय के समान, सुखी, पवित्रता में अग्नितुल्य, बल में वायु के समान हो जाते हैं ॥२-३॥

वागीश्वरसमो वाची धनेन धनपः स्वयम् ।

सार्वज्ञे शम्भुना तुल्यो दाने दधीचिना समः ॥४॥

आज्ञया देवराजोऽसौ व्राह्मण्येन प्रजापतिः ।

भृगोरिव तपस्वी च चन्द्रवत् प्रोतिवद्धनः ॥५॥

तेजसामिनसमो भक्त्या नारदः शिवकृष्णयोः ।

रूपेण मदनः साक्षात् प्रतापे भानुसविभः ॥६॥

शास्त्रचर्चास्वांज्ञिरसो जामदग्न्याः प्रतिज्ञया ।

सिद्धानां भैरवः साक्षात् गंड्जे व मलनाशकः ॥७॥

वह वाणी में वागीश्वर के समान, धन में कुबेर के समान, सर्वज्ञता में शिव के समान, दान में दधीची के समान हो जाता है ।

वह आज्ञा पालन कराने में देवराज, व्राह्मणों में वह्या, भृगु के समान तपस्वी,

चन्द्र के समान प्रीति बढ़ाने वाला, अग्नि के समान तेजस्वी, शिव तथा कृष्ण के प्रति नारद के समान भवितमान, रूप में कामदेव के समान, तथा प्रतार्थ में सूर्य के समान हो जाता है ।

वह शास्त्रचर्चा में आंगीरस, प्रतिज्ञा में जगदग्नि, सिद्धि में भैरव, तथा मलनाशकता में गंगा के जमतुल्य हो जाता है ॥६-७॥

अथवा वहुनोक्तेन किंवा तेन वरानने ।

न तस्य दुरितं किञ्चित् महाकाली स्पेरद्विया ॥८॥

शब्दब्रह्ममयीं स्वाहां भोगमोक्षैकदायिकाम् ।

भोगेन मोक्षमाप्नोति श्रुत्वा गुरुमुक्तात् परम् ॥९॥

हे वरानने ! अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? जो साधक महाकाली का स्मरण करते हैं, उनमें कोई भी पाप नहीं रह जाता ।

वे शब्दब्रह्ममयी, स्वाहारूपिणी, भोग-मोक्ष की एकमात्र प्रदायिका हैं । उनकी आराधन पद्धति को गुरु से सुनने के पश्चात् भोग में ही मोक्ष मिल जाता है ॥८-९॥

तां विद्यां शृणु वक्ष्यामि यथा भैरवतां व्रजेत् ॥१०॥

उस विद्या को मैं तुमसे कहता हूँ, जिसके द्वारा मैं भैरवत्व प्राप्त कर सका ॥१०॥

क्रोधीशं क्षतजारूढं धूम्रभैरवलक्षितम् ।

नादविन्दुसमायुक्तं मन्त्रं स्वर्गेऽपि दुर्लभम् ॥११॥

एकाशारीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये ।

महाकाली गुह्यविद्या कलिकाले च सिद्धिदा ॥१२॥

क्रोधीश को क्षतजारूढ़ करके, धूम्रभैरवी से संयुक्त करे । उसमें नाद और विन्दु का योग करने से जो मंत्र (क्री) गठित होता है, वह स्वर्ग में भी दुर्लभ है ।

हे प्रिये ! इस एकाशीरी विद्या के समान त्रिभुवन में कोई विद्या नहीं है । कलिकाल में गुह्यविद्यारूपिणी महाकाली सिद्धि देने वाली है । अब मैं कालिका के सम्बन्ध में कहूँगा ॥११-१२

अथान्यत् संम्प्रवक्ष्यामि दक्षिणां कालिकां पराम् ।
 वाग्भवं बीजमुच्चार्यं कामराजं ततः परम् ।
 मायाबीजं ततो भद्रे त्र्यक्षरं मन्त्रमीरितम् ॥१३॥

प्रथमतः वाग्भवबीज का उच्चारण करे । तब कामबीज का उच्चारण करे ।
 पहलात् में मायाबीज का उच्चारण करे । अब तीन अक्षर का मंत्र हो गया ।
 अर्थात् ऐं क्लीं हों ॥१३॥

कामराजं ततो कूच्चीं मायाबीजमतः परम् ।
 अपरं त्र्यक्षरं प्रोक्तं पूर्वोक्तं फलदं प्रिये ॥१४॥
 हलाहलं समुच्चार्यं मायाद्रव्यमतः परम् ।
 एतत् त्र्यक्षरं देवो सर्वकामफलप्रदम् ॥१५॥

कामबीज उच्चारण करके कूच्चीं बीज, तदनन्तर मायाबीज का उच्चारण करने
 से त्र्यक्षर मंत्र होता है, जो पूर्वकथित मंत्र के समान फलप्रद है । (अर्थात्
 क्लीं हुँ हों हों) ।

हे देवी ! हलाहल का उच्चारण करके दो मायाबीज का उच्चारण करे ।
 इससे भी त्र्यक्षर मंत्र गठित हो जाता है । (अर्थात्, ओ हों हों) वह त्र्यक्षर
 मंत्र सर्वप्रकार की कामनाओं में फलदायक है ॥१४-१५॥

एतेषाऽच्चेव मंत्राणां फलमन्यत् श्रूणु प्रिये ।
 म कालनियमो नास्ति नारिमित्रादिदूषणम् ॥१६॥
 कायद्वलेषकरं नैव प्रयासो नास्य साधने ।
 दिवा वा यदि वा रात्रौ जपः सर्वत्र शोभनः ॥१७॥
 भोगमोक्षविरोधोऽत्र साधने नास्ति निश्चितम् ।
 भोगेन लभते मोक्षां न गोऽपि विद्ययानया ॥१८॥

हे प्रिये ! इन सब मन्त्रों का अन्य फल भी सुनो । इन सब मन्त्रों के उच्चारण,
 जप के लिये समयबद्धता नहीं है । इसमें शत्रुमित्रादि विचारजनित कोई
 बन्धन अथवा दूषण भी नहीं हो सकता ॥१६-१८॥

इनकी साधना में कोई शारीरिक परिश्रम अथवा विशेष चेष्टा का भी कोई प्रयोजन नहीं है । दिन अथवा रात्रि में अथवा किसी भी समय, किंवा सर्वकाल (सर्वदा) इसका जप करे ।

इनकी जप साधना द्वारा भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होता है । यह निश्चित है । इन विद्याओं के द्वारा भोग में ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है ॥१६-१८॥

अस्या जपात्था ध्यानात् लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।

नानया सदृशीविद्या नानया सदृशो जपः ॥१६॥

उक्त मंत्रों के जप द्वारा अथवा ध्यान के द्वारा चार प्रकार को मुक्ति (सायुज्य-सालोक्य-सारूप्य-सार्वित्य) प्राप्त हो जाती है । इसके समान विद्या तथा जप अन्य है ही नहीं ॥१९॥

नानया सदृशं ध्यानं नानया सदृशं तपः ।

सत्यं सत्यं पूनः सत्यं सत्यपूर्वं वदाम्यहम् ॥२०॥

अनया सदृशी विद्या नास्ति सिद्धिः सुगोचरे ।

अथ संक्षेपतो वक्ष्ये पूजाविधिमनुत्तमम् ॥२१॥

विस्तारे कस्य वा शक्तिः को वा जनाति तत्वतः ।

पूजा च त्रिविधा प्रोक्ता नित्य-नैमित्ति-काम्यते ॥२२॥

तत्रैव नित्यपूजाऽच्च वक्ष्ये ताऽच्च निशामय ।

भैरवास्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्द उदाहृतम् ॥२३॥

इसके समान ध्यान अथवा तप नहीं है । यह तुमसे सत्य की शपथ लेकर कहता हूँ । इसके समान विद्या अथवा सिद्धि त्रिभुवन में परिलक्षित नहीं हो सकती । अब मैं संक्षेप में पूजाविधि का वर्णन करता हूँ । विस्तार से पूजा करने की शक्ति किसे है ? कौन इसका तात्त्विक विधान जानता है ? पूजा तीन प्रकार की होती है । नित्य-नैमित्तिक तथा काम्य रूपी तीन पूजा का वर्णन करता हूँ ।

अब नित्य पूजा को सुनो । इसके ऋषि हैं भैरव । इसका छन्द उष्णिक छन्द है ॥२०-२३॥

देवता मुनिभिः प्रोक्ता महाकाली पुरातनी ।

विनियोगस्तु विद्यायाः शुरुषार्थचतुष्टयै ॥२४॥

इसकी देवता हैं पुरातनी महाकाली । यह ऋषियों का कथन है । इस विद्या का विनियोग है अर्थ-धर्म-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयै ॥२४॥

पंचशुद्धि विहीनेन यत्कृतं न च तत् कृतम् ।

पंचशुद्धि विना पूजा अभिचाराय कल्प्यते ॥२५॥

पंचशुद्धि के अभाव में पूजा करना अथवा न करना समान स्थिति है । पंचशुद्धि के विना जो पूजा की जाती है, वह केवल अभिचार ही है ॥२५॥

आत्मशुद्धिः स्थान शुद्धिर्व्यव्यस्य शोधनस्तथा ।

मन्त्र शुद्धिर्वशुद्धिः पंचशुद्धिरितीरिता ॥२६॥

आत्मशोधन, स्थानशोधन, द्रव्यशोधन, मन्त्रशोधन, तथा देवता का शोधन ही पंचशुद्धि है ॥२६॥

भूप्रदेशे समे शुद्धिः पुष्पप्रकरसंडकुले ।

आसनं कल्पयेदादौ कोमलं कम्बलन्तु वा ॥२७॥

वामे गुरुन् पुनर्नत्वा दक्षिणे गणपतिं विभुम् ।

भूतशुद्धि तथा कुर्यात् पूजायोग्यो यथा भवेत् ॥२८॥

समतल भूमि का शोधन करे । उपकरणों का भी शुद्धीकरण करे । इसके लिये केवल पुष्प ही एकमात्र शोधन का करण है । सर्वप्रथम कोमल आसन अथवा कम्बलासन विछाये ।

बामभाग में गुह को नमस्कार करे । दक्षिण में गणेश को प्रणाम करे । इसके पश्चात् इस प्रकार भूतशुद्धि करे, जिससे पूजा की उपयुक्तता आ सके ॥२७-२८॥

प्राणायामादि विविवत् ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ।

आदौ शुद्धिर्भैरवाय ऋषये नम इत्यथ ॥२९॥

उष्णिक छन्दसे नमसा मुखे छन्दो विनिर्दिशेत् ।

सम प्रिये महाकाली देवतायै नमो हृदि ॥३०॥

विविध प्राणायामादि करे । ऋषिन्यास, अंगन्यास आदि का अनुष्ठान करे । आदि में शुद्धि के ऋषि भैरव को नमस्कार करके उष्णिक् छन्द को नमस्कार करे । नमस्कार करते हुये मुख से छन्द को निर्देश करे । (अर्थात् यह कहे कि उष्णिक् छन्द को नमस्कार करता है) हैं प्रिये ! तदनन्तर हृदय में महाकाली देवता को नमन करे ।

ह्रीं बीजाय नमः पूर्वे हुं शक्तये नमोऽप्यथ ।

कवित्वार्थे विनियोग इति विन्यस्य वांच्छया ॥३१॥

केवलां मातृकां न्यस्य बीजन्यासं समाप्तरेत् ।

ॐ क्रां अंगुष्ठ्योर्नस्य ऊँ क्रीं तर्जन्योर्नमः ॥॥३२॥

पूर्व में ह्रीं बीज को नमस्कार करने के लिये “ह्रीं बीजाय नमः” का प्रयोग करे । तत्पश्चात् “हुं शक्तये नमः” द्वारा शक्ति को नमस्कार करना चाहिये । कवित्व की प्राप्ति के लिये इस प्रकार से कामनानुसार न्यास करे । केवल मातृका-न्यास करके बीजन्यास का अनुष्ठान करे । “ॐ क्रां” मन्त्र के द्वारा अंगुष्ठद्वय का न्यास होता है । ॐ क्रीं मन्त्र के द्वारा दोनों तर्जनी का न्यास करे ॥३१-३२॥

ऊँ क्रं मध्यमयोर्नस्य ऊँ क्रैं अनामिकाद्वयोः ।

ऊँ क्रीं कनिष्ठायुग्ले ऊँ क्रः करतले तथा ॥३३॥

पुनर्हृदयादिष्वेते ज्योतियुक्तैः षडङ्गकम् ।

षट्दीर्घं भावं स्वबीजैः प्रणवाद्यस्तु विन्यसेत् ॥३४॥

“ॐ क्रूं” मन्त्र द्वारा मध्यमा अंगुली का, “ॐ क्रीं” मन्त्र द्वारा अनामिका का, “ॐ क्रौं” द्वारा दोनों कनिष्ठिका उंगलियों का तथा “ॐ क्रः करतले फट्” द्वारा दोनों करतल का न्यास करे ।

इसके पश्चात् हृदयादि अंग का न्यास करे इसमें प्रणवादि स्वबीज के द्वारा ही अंगन्यास करना चाहिये, जैसे ॐ हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै वपट्, ॐ कवचाय हुं, ॐ नेत्रवत्राय वौषट्, ॐ करतलपृष्ठाभ्यां फट् । इत्यादि स्वबीज का अर्थ है साधक का गुरु प्रदत्तबीज मंत्र, जिसके आगे प्रणव लगा हो ॥३३-३४॥

वर्णन्यासां तथा कुर्यात् येन देवीमयो भवेत् ।
 अ आ इ ई उ ऊ ऋ ऋ लृ लृ च हृदये न्यसेत् ॥३५॥
 ए ए ओ औ अं अः क ख ग घ वै दक्षिणे भुजे ।
 डं च छ ज झ ङ ट ठ डं ड वै वामके भुजे ॥३६॥
 ण त थ द ध न प फ ब भ दक्षा जहृके न्यसेत् ।
 म य र ल व श ष स ह ल अ वाम जहृके ॥३७॥
 पंचधा सप्तधा वापि मूलविद्यां समुच्चरन् ।
 शिव आदि च पादान्तं न्यसेद्व्यापकमुत्तमम् ॥३८॥

वर्णन्यास इस प्रकार करने चाहिये जिसके द्वारा साधक देवीमय हो जाये ।
 जैसे—“अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ऋं लृं लृं नमः” यह कहकर हृदय का न्यास करे ।
 एं एं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः—दक्षिण भुजे
 डं चं छं जं झं नं टं ठं डं वं नमः—वाम भुजे
 तं थं दं धं नं पं फं बं नमः दक्षिण उरु
 मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमः वाम उरु
 इस प्रकार मूल बीज के उच्चारण द्वारा पांच अथवा सात बार न्यास करे ।
 मस्तक से लेकर पैर तक उम रूप से व्यापक न्यास करना पड़ता है ॥३५-३८॥

नित्यन्यास इति प्रावतं सर्वं एव सुखावहः ।
 अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि भैरवाकारदायकम् ॥३९॥
 हिमालयगिरेमध्ये नगरे भैरवस्थ च ।
 दिव्यस्थाने महापीठे मणिमण्डपराजिते ॥४०॥

इस प्रकार से नित्यन्यास कहा गया है, जो साधकों के लिये सुखदायक है ।
 इस प्रकार अब ध्यान का वर्णन करूँगा जो भैरव के आकार (भैरव रूपता) को
 प्रदान करता है । हिमालय के पर्वत शृंग अथवा भैरव नगरी (काशी) प्रभृति
 दिव्यस्थान में, मणिमण्डप के द्वारा शोभित महापीठ में, ॥३९-४०॥

नारदाद्यर्मुनिश्चेष्ठः संसोवितं पदाम्बुजाम् ।
 तत्र व्यायेन्महाकालीमाद्यां भैरववन्दिताम् ॥४१॥

नारद प्रभृति मुनिगण द्वारा जिनका चरणकमल सेवित हैं, भैरव वन्दित उन महाकाली का ध्यान करे ॥४१॥

नीलेन्दीवरवर्णिनीं युगमपीन तुङ्गस्तनीम् ।
सृष्टश्रीहरिपीठराजितवतीं भीमां त्रिनेत्रां शिवाम् ॥
मुद्रा खड्गकरां वराभययुतां चित्राम्बरोद्दीपनीं ।
वन्दे चांच्चल चन्द्रकान्तमणिभिर्मलां दधानां पराम् ॥४२॥

जिनका वर्ण नील इत्वीवर पुष्प के समान है, जिनके दोनों स्तन अत्यन्त उत्तम हैं, जो सुप्त श्रीहरि की शश्या के शेषनाग के समान शोभायमान हैं, जो अति भयंकर होने पर भी शिवस्वरूपा तथा त्रिनेत्रा हैं, जो मुद्रा तथा खड्ग धारण करती हैं, जो वर तथा अभय देने वाली हैं, वे महाकाली चित्राम्बर द्वारा उद्दीपनी हैं। जो चञ्चल चन्द्रकान्तमणि द्वारा रचित माला धारण करती हैं, उनकी हवा सतत वन्दना करते हैं ॥४२॥

ध्यानान्तरं प्रवक्ष्यामि शृणु गौरी गिरे: स्मृते ।
तत्र पीठे महादेवीं कालीं दानवसेविताम् ॥४३॥

हे हिमालय की पुत्री गौरी ! अब मैं एक अन्य ध्यान का वर्णन करता हूँ ।
उसे सुनो । महादेवी काली सदा दानवों के द्वारा सेविता हैं ॥४३॥

मेघाञ्जिं विगताम्बरां शवशिवारूढां त्रिनेत्रां पराम् ।
कण्ठालम्बित वाणयुग्मलसितां मुण्डावलीमण्डत्ताम् ॥४४॥
वामाघोर्ध्वं कराम्बुजे नरः शिरः खड्गञ्च सव्येतरे ।
दानाभीति विषुक्त केशनिच्या ध्येया सदा कालिका ॥४५॥

जिनका अंग मेघ के समान है, जो दिग्म्बरी है, शिविका पर आरूढ़ा तथा त्रिनयना है, जिनके कर्ण लम्बायमान वाणयुग्म के द्वारा शोभित हैं तथा जो मुण्डावली से मण्डित, विभूषिता है, जिनके वाम करकमलों में उर्ध्वं तथा अवः: मुण्डमाला विभूषित है, दक्षिण हाय में खड्ग सुशोभित है, जिनके बाल (केशराशि) विमुक्त खुले हैं, उन कालिका देवी का सदा ध्यान करना चाहिये ॥४४-४५॥

अपरञ्च प्रवक्ष्यामि ध्यानं परमदुर्लभम् ।
कालीं करालवदनां धोरदंष्ट्रां त्रिलोचनाम् ।
स्मरेच्छवकरश्रेणी कृतकाञ्चीं दिग्म्बराम् ॥४६॥

अब एक और ध्यान का वर्णन करता हूँ जो जगत् में अत्यन्त दुर्लभ है ।
करालवदना, त्रिलोचना, धोरदंष्ट्रा, और जिन्होंने शर्वों की करपंक्ति के द्वारा स्वयं
को सुचोभित किया है उन दिग्म्बरा काली का स्मरण करना चाहिये ॥४६॥

वीरासनसमासीनां महाकालोपरिस्थिताम् ।
श्रुतिमूलसमाकीर्णं सूक्कणीं धोरनादिनीम् ॥४७॥

जो महाकाल के ऊपर वीरासन में बैठी है, जिनके ओष्ठों का प्रान्तभाग
(किनारा) कानों तक विस्तृत है, वे धोर नाद करने वाली हैं ॥४७॥

मुण्डमालागलद्रक्त चवितां पीवरस्तनीम् ।
मदिरामोदितास्फाल कम्पिताखिल मेदिनीम् ॥४८॥
वामे खड्गं छिन्नमुण्डं धारिणीं दक्षिणे करे ।
वराभययुतां धोर वदनां लोलजिह्विकाम् ॥४९॥
शकुन्तपक्ष संयुक्तं बाणकर्णं विभूषिताम् ।
शिवाभिधोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ॥५०॥

जो मुण्डमालाओं से वह रहे रक्त द्वारा चम्पित हैं, जिनके स्तन अत्यन्त स्थूल
हैं, जो मदिरापान से मत्त होकर समग्र पृथ्वी को कम्पित कर रही है, जिनके
वाम हस्तों में खड्ग तथा दक्षिण हस्तों में छिन्न मुण्ड है, जो वराभय-प्रदायिनी
हैं, धोर वदना तथा चंचल चिह्नों वाली हैं, उन काली का ध्यान करे । जिनके
कान शकुन्तपक्ष संयुक्त बाण द्वारा विभूषित हैं, जो समागत प्रलय के समान धोर
नाद (रव) कर रही हैं, शिवाओं द्वारा सेविता हैं ॥४८-५०॥

चण्डहास चण्डनाद चण्डाख्यानैच भैरवैः ।
गृहीत्वा नरकंड्बाले जयशब्दं परायणैः ॥५१॥
सेविताखिलसिद्धौधैर्मुर्निभिः सेवितां पराम् ।
एषामन्यतमं ध्यानं कृत्वा च साधकोत्तमः ॥५२॥

जिनके पास प्रचण्ड हास्य, प्रचण्डनाद तथा प्रचण्ड कलरव द्वारा जयशब्द परायण भैरवगण नरकंकाल धारण करके स्थित रहते हैं, जो निखिल सिद्ध, मुनिगण द्वारा सेविता है उन काली का ध्यान उत्तम सावकों को करना चाहिये । ॥५१-५२॥

मानसैरुपचारैश्च सोऽहमात्मानमर्चयेत् ।
ततो देवीं समभ्यर्च्य अर्ध्यद्वयं निवेदयेत् ॥५३॥

इस ध्यान में मानसोपचार के द्वारा सोऽहं मंत्र से आत्मार्चन करे । तदनन्तर देवी की पूजा का समापन करते हुये २ अर्ध्य प्रदान करे ॥५३॥

दशपञ्चाश पद्मेशु पीठपूजां समाचरेत् ।
तत्राबाह्य महादेवीं नियमेन समाहितः ।
ततो ध्यायेन्महादेवीं कालिकां कुलभूषणम् ॥५४॥

दशदलपद्म (मणिपूर) में पूजा करके पीठ पूजा करे । वहाँ पर देवी का आवाहन करते हुये नियमपूर्वक समाहित होकर कौलिकों की भूषणस्वरूपा महादेवी कालिका का ध्यान करे ॥५४॥

महाकालं यजेत् यत्नात् पीठशक्ति ततो यजेत् ॥५५॥

पहले महाकाल का पुजन करे, तत्पञ्चाश पीठस्थ शक्ति की यत्नपूर्वक पूजा करे ॥५५॥

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ।
विप्रचितां ज्ञाया चैव बहिः पट्कोणके पुनः ॥५६॥
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां तत्र त्रिकोणके पुनः ।
नीलां धनां बलाकाञ्च तथा पर त्रिकोणके ॥५७॥

वे काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला तथा विरोधिनी हैं । विविध प्रकृष्ट चित्तवाली काली की बहिःपूजा के पञ्चात् पुनः स्वाधिष्ठान में उनका पूजन करे ।

स्वाधिष्ठान में पूजन करने के अनन्तर पुनः त्रिकोण (मूलाधार) में उग्रप्रभा दीप्ता उग्रमूर्ति कालिका का पूजन करे । तदनन्तर परत्रिकोण में सील एवं बन मेघद्वृति वाली बलाकारूपिणी का पूजन करे ॥५६-५७॥

मात्रा मुद्रां नित्याञ्चैव तथैवान्तस्त्रिकोणके ।

शर्वा श्यामा असिकरा मुण्डमाला विभूषणा ॥५८॥

अब अन्तः त्रिकोण में मुद्रा प्रदर्शन करते हुये व्यान करे । (त्रिकोण के तीन रूप यहाँ कहें गये हैं । यथा त्रिकोण, पर त्रिकोण, अन्तः त्रिकोण) । व्यान इस प्रकार है, जो शर्वा, श्यामा, हाथ में खड़ग धारिणी, मुण्डमाला से विभूषित है ॥५८॥

तज्जनीं बामहस्तेन भारयन्ती शुचिस्मिता ।

ब्रह्माद्यास्तथा ब्राह्म्ये यजेत् पूर्वदलक्षमात् ॥५९॥

बामहस्त में जिन्होंने तज्जनी भारण किया है, वे शुचिस्मिता हैं । अब ब्राह्मी प्रभूति देवीगण की भी पूर्वदलक्षम से वाह्यपूजा करे ॥५९॥

ब्राह्मी नारायणी चैव तथैव च महेश्वरी ।

चामुण्डापि च कौमारी तथा चैवापराजिता ॥६०॥

वाराही च तथा पूज्या नारसिंही तथैव च ।

सर्वासामपि दातव्या बलिः पूजा तथैव च ॥६१॥

अनुलेयत्तकं गन्धं वृपदीपो च पानकम् ।

त्रिस्त्रिः पूजा च कर्तव्या सर्वासामपि साधकैः ॥६२॥

ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी प्रभूति की पूजा करे । चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही और नारसिंही का भी पूजन करना चाहिये । समस्त देवियों की बलि द्वारा पूजा करे । उन्हें अनुलेपन, गन्ध, घूप, दीप तथा पान निवेदित करे । समस्त पूर्वोक्त देवियों का पूजन तीन-तीन बार करे ॥६०-६२॥

पुनर्गन्धादिभिः पूजा जप्त्वा शेषं समर्पयेत् ।

समयं चार्चयेत् देवया योगिनी-योगिभिः सह ॥६३॥

मधु मांस तथा मत्स्यं यत् किंचित् कुलसाधनम् ।

शक्त्यै दत्त्वा ततः पश्चात् गुरुवे विनिवेदयेत् ॥६४॥

पुनः गन्धादि द्वारा पूजन करे और यथाशक्ति जप करे । अन्त में जप का समर्पण कर दे । योगिनी-योगी की पूजा साथ-साथ ही करे ।

मधुमांस, मत्स्य आदि कुलसाधन द्वारा कुलम्नाय के मत में विद्वित उषचारों द्वारा पूजन करे । पहले शवित को इन वस्तुओं को अर्पित करे, तदनन्तर गुह को भी अर्पित करे ॥६३-६४॥

तदनुजां मूर्धिन कृत्वा शेषं चात्मनि योजयेत् ।

मधु मांसं विना यस्तु कुलं पूजां समाचरेत् ।

जन्मान्तर सहस्रस्य सुकृतिस्तस्य नश्यति ॥६५॥

तदनन्तर गुह का आदेश शिरोधार्य करके स्वयं प्रसाद ग्रहण करे । जो मधुमांसादि के विना कुलपूजन करता है, उसके हजारों जन्मों का सुकृत नष्ट हो जाता है ॥६५॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मकारं पञ्चकैर्यजेत् ।

मधुना न विना मंत्रं न मंत्रेण विना मधु ।

परस्पर विरोधेन कथं सिद्धयन्ति साधकाः ॥६६॥

इस प्रकार समस्त मकार पञ्चकादि (मत्स्य-मुद्दा-मांस-मद्य-मैथुन) के द्वारा प्रयत्न पूर्वक पूजन करे । मद्य के विना मंत्र तथा मंत्र के विना मद्य वियुक्ताबस्था के द्योतक हैं । इनको वियुक्ति से मन्त्रसिद्धि कैसे हो सकेगी ? ॥६६॥

कुण्डं कुम्भं कपालादि पदाथानां निषेवनम् ।

सौरे तद्वे विरुद्धञ्च शैवे शाक्ते महाफलम् ॥६७॥

सौरतंत्र में कुण्ड-कुम्भ-कपाल आदि सेवन करना वर्जित है । परन्तु शैव तथा शाक्त मार्ग में यह सब महत् फल प्रदायक है ॥६७॥

ब्रह्माण्डखण्डं सम्मूतं मशेषं रत्नं सम्भवम् ।

श्वेतं पीतं सुगन्धिञ्च निर्मलं भूरि तेजसम् ॥६८॥

अथवा कुम्भमध्येऽस्मिन् स्त्रवन्तं परमामृतम् ।

अन्तर्लंयो वर्हिमध्ये त्रिकोणोदरं वर्त्तिनी ॥६९॥

तद्वाहयं स्फाटिकोदारं मणिचन्द्रञ्च मण्डलम् ।

तेनामृतेन तद्वाहये चिन्तयेत् परमामृतम् ॥७०॥

ब्रह्माण्ड खण्ड से उत्पन्न अनन्त रत्न, श्वेत, पीत, सुगन्ध, निर्मल तथा प्रभूत तेजयुक्त इस कुम्भ से अर्थात् शरीर के उर्ध्व देश सहस्रार से परमामृत सर्वदा स्त्रवित होता रहता है । सहस्रार चक्र में जो त्रिकोण विद्यमान है, उसमें से ज्ञरते हुये अमृत का ध्यान करते रहने से अन्तर्लय हो जाता है ।

स्फटिक के समान स्वच्छ मणियुक्त पात्र में जो बाह्य अमृत है, उस अमृत के द्वारा परमामृत का चिन्तन करे ॥६८-७०॥

आरम्भस्तरुणः प्रौढस्तदन्ते तु न्यासः पुनः ।
ऐभिरुल्लासवात् योगी स्वयं शिवमयो यतः ॥७१॥
सर्वशेषे च देवेशि सामान्याध्यं पदेऽर्पयेत् ।
विशेषाध्यं शिरे दत्त्वा देव्याः प्रियतमो भवेत् ॥७२॥
साङ्गक्रिया पदे दत्त्वा सामान्याध्यं शिवे भवेत् ।
इत्युक्त्वा स परामयो शक्तितोषण कारकः ॥७३॥

चिन्तन आरंभ करे, आरंभ में तारुण्य कि तदनन्तर प्रोढावस्था (अन्तः प्रदेश में) प्राप्त होने लगती है । इसके पश्चात् न्यास करे । ऐसे अनुष्ठान के द्वारा उल्लास मिलता है । अब योगी शिव के समान हो जाता है । हे देवेशी ! सर्वान्त में शक्ति के चरणों में सामान्य अर्ध्य प्रदान करना चाहिये । मस्तक में विशेष अर्ध्य देने से वह कुलसाधक देवी को प्रिय हो जाता है । समस्त क्रिया का देवी के चरणों में अर्पण करने के उपरान्त मस्तक में सामान्य अर्ध्य देना ही चाहिये ।

उन पराशक्ति को प्रसन्न रखने वाले शिव इस प्रकार उपदेश करते हुये कहते हैं कि— ॥७१-७३॥

भोगेन लभते मोक्षं बहुना जलिपतेन किम् ।
नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन ॥७४॥
यद्वा तद्वा येन केन सर्वदां सर्वतोऽपि च ।
दोषितां ध्यान योगेन शुद्धशेषं न संशयः ॥७५॥

इस मार्ग में भोग से ही मोक्ष मिलने लगता है । अब अधिक कहने से क्या लाभ ? इस मार्ग का समस्त नियम पुरुष के ही लिये है । शक्ति (स्त्री) के लिये कोई नियम नहीं है । वे किसी भी प्रकार से सर्वक्षेत्र में ध्यान कर सकती है । ध्यान द्वारा ही स्त्री विशुद्ध हो जाती है । यह निःसंदिग्ध है ॥७४-७५॥

बालाम्बा यौवनोन्मत्तां वृद्धाम्बा युवतीं तथा ।
कुत्सिताम्बा महादुष्टां नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥७६॥
तासां प्रहारो निदाच्च कौटिल्यमप्रियं तथा ।
सर्वथा न च कर्तव्यं अन्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥७७॥

बालिका, यौवनोन्मत्ता युवती, वृद्धा, कुत्सिता, महादुष्टा, अर्थात् प्रत्येक प्रकार की स्त्रियों को नमस्कार करके विदा करे । स्त्रियों पर प्रहार करना, उनके प्रति कुटिलाचरण करना, उनके प्रति अप्रिय आचरण करना वर्जित है । ऐसा करने पर सिद्धि के मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है ॥७६-७७॥

इति ते कथितं शेषमाचरेत् लक्षणं प्रिये ।
नित्यपूजाक्रमं भक्त्या जात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥७८॥

हे प्रिये । इस प्रकार से साधना करे । पूर्वोक्त नित्यपूजा का भक्तिपूर्वक अनुष्ठान करने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥७८॥

॥ इति दक्षिणाम्नाये कंड्कालमालिनीतंत्रे चतुर्थः पटलः ॥
॥ दक्षिणाम्नाय के कंकालमालिनी तंत्र का चतुर्थ पटल समाप्त ॥



पञ्चमः पलटः

श्री पार्वत्युवाच—

कथयह्व महाभाग पुरश्चरणमुत्तमम् ।
कस्मिन् काले च कर्तव्यं कलौ सिद्धिदमद्भूतम् ॥१॥

श्रीपार्वती पूछती है—हे महाभाग ! इसवार पुरश्चरण के सम्बन्ध में उपदेश करिये । वह कलिकाल में अपूर्व सिद्धिदाता है । इसका अनुष्ठान कब करना चाहिये ? ॥१॥

श्री ईश्वर उवाच—

सामान्यतः प्रवक्ष्यामि पुरक्षर्याविधिं शृणु ।
नाशुभो विद्यते कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ॥२॥
न विशेषो दिवारात्रौ न संध्यायां बहानिशि ।
कालाकालं महेशानी भ्रान्तिमात्रं न संशयः ॥३॥
प्रलये महति प्राप्ते सर्वं गच्छति ब्रह्मणि ।
तत्कालं च महाभीमे को गच्छति शुभाशुभम् ॥४॥
कलिकाले महामाये भवन्त्यल्पायुषो जनाः ।
अनिदिष्टायुषः सर्वे कालचिन्ता कथं प्रिये ॥५॥

श्रीईश्वर कहते हैं—अब साधारण रूप से पुरश्चरणविधि का उपदेश करता हूँ । श्रवण करो । इसके अनुष्ठान के लिये कोई समय अशुभ नहीं है, कोई स्थान भी अशुभ नहीं है । दिन अथवा रात्रि की भी कोई विशेषता नहीं है । महानिशा अथवा सन्ध्या में अनुष्ठान की भी कोई महत्ता नहीं है । हे महेशानी ! अनुष्ठान के समय अथवा असमय का विचार करना भी भ्रान्ति ही है ।

हे प्रिये ! हे महामाये ! कलिकाल में मनुष्य अल्पायु होते हैं । समस्त ग्राणीगण की आयु का कोई निश्चित काल नहीं है (अर्थात् कोई अधिक आयु

बाले हैं, कोई अपेक्षाकृत अल्पायु है) । अतएव काल चिन्तन करता कैसे चचित है ? ॥२-५॥

यत्कालं ब्रह्मचिन्तायां तत्कालं सफलं प्रिये ।
पुरश्चर्याविधौ देवी कालचिन्तां न चाचरेत् ॥६॥
नात्र शुद्धाद्यपेक्षास्ति न निषिद्ध्यादि भूषणम् ।
दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न हि ॥७॥
न जपेत् कालनियमों नाचार्दिष्वपि सुन्दरी ।
स्वेच्छाचारोऽत्र नियमों महामन्त्रस्य साधने ॥८॥

हे प्रिये ! जिस काल में ब्रह्मचिन्तना हो सके, वही काल विहित है । हे देवी ! पुरश्चरण विधि में किसी भी प्रकार की कालचिन्तना नहीं करे । इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की शुद्धि की अपेक्षा नहीं है ।

निषिद्ध भी कुछ नहीं है । दिशा तथा काढ़ का भी कोई प्रतिबन्धक नियम नहीं है । अर्थात् किसी स्वान का भी विधान नहीं है । हे सुन्दरी ! जप में भी कोई काल नियम प्रभावी नहीं हो सकता । इसी प्रकार पूजन का भी कोई काल नियम नहीं है । इस महामन्त्र साधन में स्वेच्छाचार ही नियम है ॥६-८॥

नाधर्मो विद्यते सुभ्रु प्रचरेत् दुष्टमानसः ।
जम्बूद्वीपे च वर्षे च कल्पी भारतसंज्ञके ॥ ९ ॥
षष्मासादपि गिरिजे जपात् सिद्धिं संशयः ।
मन्त्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु तदद्य कथयामि ते ॥१०॥
सुभगे शृणु चार्वङ्गी कल्याणी कमलेक्षणे ।
कलौ च भारतेवर्षे ये न सिद्धिः प्रजायते ॥११॥

हे सुभ्रु ! जम्बूद्वीप में भारतनामक वर्ष में कोई अधर्म नहीं है । केवल दुष्ट मन ही अभ्रित होता है । हे गिरिजे ! छ मास में ही जप द्वारा सिद्धि मिल जाती है । यह निःसंदिग्ध है । समस्त तंत्रों में जो मन्त्र कहा गया है, वह मैं तुमसे कहता हूँ । हे सुभग ! कमल जैसे नेत्रों बाली ! सुन्दर अंगों बाली कल्याणी ! इस कलिकाल में भारतवर्ष में जैसे सिद्धि मिल सकती है, उसे सुनो । ॥९-११॥

तत् सर्वं कथयाम्यद्य सावधानावधारय ।
 कालिकाले वरारोहे जपमात्रं प्रशस्यते ॥१२॥
 न तिथिर्न व्रतः होमं स्नानं सन्ध्या प्रशस्यते ।
 पुरश्चर्या विना देवी कलौ मन्त्रं न साधयेत् ॥१३॥

आज मैं वह सब तत्व कहूँगा । हे वरारोहे ! कलिकाल में केवल जप ही प्रशंस्य है । इसमें तिथि, व्रत, होम स्नान, सन्ध्या का कोई भी नियम नहीं है । हे देवी ! पुरश्चरण के अतिरिक्त कोई भी साधना करना कलिकाल में उचित नहीं है ॥१२-१३॥

सत्यत्रेतायुगं देवि द्वापरं सुखसाधनम् ।
 कलिकाले दुराधर्षं सर्वदुःखमयं सदा ॥१४॥
 सारं हि सर्वं तंत्राणं महाकालीषु कथयते ।
 प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा ततः स्नानं समाचरेत् ॥१५॥
 कृत्वा सन्ध्या तर्पणच्च संक्षेपेण वरानने ।
 पूजां चैव वरारोहे यस्य यत् पटलक्रमात् ॥१६॥

हे देवी ! सत्य, त्रेता तथा द्वापर युग में सुखपूर्वक साधना सम्पन्न हो जाती है । कलिकाल में साधना अत्यन्त दुःखमय तथा कष्ट साध्य है । महाकाली की साधना में समस्त तंत्रों का सारतत्व सन्निहित रहता है । प्रातः काल में नित्यकृत्य समाप्त करके स्नानादि करे ।

हे वरानने ! तदनन्तर संक्षेप में सन्ध्या तथा तर्पण करे । पूर्वोत्त चतुर्थं पटल में जिस पूजा का उपदेश दिया गया है, उसके अनुसार पूजा का समाप्त करे ॥१४-१६॥

पूजाद्वारे च विन्यस्य वर्लि दद्यात् यथाक्रमम् ।
 प्राणायामत्रयञ्चैव माषभक्तबर्लि तथा ॥१७॥

पूजाद्वार पर यथाक्रम से बर्लि प्रदान करे । इसके पश्चात् तीन बार प्राणायाम करके उर्द्ध के दाल की खिचड़ी इष्टदेवी को उपहार स्वरूप अर्पित करे ॥१७॥

संकल्पोपास्य देवेशी बलिदानस्य साधकः ।

आदौ गणपतेर्भीजं गमित्येकाक्षरं विदुः ॥१८॥

हे देवी ! साधक पूर्वोक्त बलिदान के लिये संकल्प करके सर्वप्रथम “गं” रूप एकाक्षर बीज लिखे यह तत्रविद् कहते हैं ॥१८॥

भूमौ विलिख्य गुप्तेन बलि पिण्डोपमं ततः ॥१९॥

ॐ गं गणपतये स्वाहा इति मंत्रेण साधकः ।

बलिमित्यन्तं च सर्वत्र बीजोपरि प्रदापयेत् ॥२०॥

भूमि में उस एकाक्षार मंत्र बीज को गुप्तरूप से (उपांशुरूप से) लिखे । तत्पश्चात् साधक उस उदं दाल की खिचड़ी का पिण्ड बनाये । अब “ॐ गं गणपतये स्वाहा” मंत्र का उच्चारण करते हुये उस लिखित मंत्रबीज के उपर इस पिण्ड की बलि दे ॥१९-२०॥

ॐ भैरवाय ततः स्वाहा भैरवाय बलिस्ततः ।

ॐ क्षं क्षेत्रपालाय स्वाहा क्षेत्रपाल बलि ततः ॥२१॥

ॐ यां योगिनिभ्यो नमः स्वाहा च योगिनी बलिम् ।

संमूज्य विविना दद्यात् पूर्ववत् क्रमतो बलिम् ॥२२॥

कथोपकथनं देवि त्यजेदत्र सुरालये ॥२३॥

इसके अनन्तर भैरव के लिये “ॐ भैरवाय स्वाहा” द्वारा, क्षेत्रपाल के लिये “ॐ अं क्षेत्रपालाय स्वाहा”, तथा योगिनी के लिये “ॐ यां योगिनीभ्यो नमः स्वाहा” द्वारा बलि प्रदान करे । विधिपूर्वक प्रत्येक की पूजा करने के उपरान्त ही बलि देना चाहिये । हे देवी ! इस देवालय में कभी भी कथनोपकथन (वात्तर्लिय) न करे ॥२१-२३॥

पूर्वं गणपतेर्भद्रे उत्तरे भैरवाय च ।

पश्चिमे क्षेत्रपालाय योगिन्यै दक्षिणे ददेत् ॥२४॥

हे भद्रे । पूर्व दिशा में गणपति को, उत्तर में भैरव को, पश्चिम में क्षेत्रपाल को तथा योगिनी को दक्षिण में बलि दे ॥२४॥

इन्द्रादिभ्यो वर्लि दद्यात् आत्मकल्याणहेतवे ।
सदा सिद्धिमवाप्नोति चान्यथा हास्य केवलम् ॥२५॥

अपनी कल्याण प्रगति के लिये इन्द्रादि देवताओं को भी यह वर्लि प्रदान करे ।
इससे सिद्धि मिल जाती है, अन्यथा समस्त सावन हास्यास्पद स्थिति में परिणत होने की संभावना है ॥२५॥

पलैकं माषङ्गल्पञ्च पलभेकञ्च तण्डुलम् ।
अर्धतोलं धृतञ्चौव दधिमधिर्द्वितोलकम् ॥२६॥
शकरैकतोलकेन वर्लि दद्यात् सुसिद्धये ।
एतेषां सहयोगेन वलिर्भवति शाम्भवी ॥२७॥
पूजास्थाने तथा भद्रे कर्मबीजं लिखेततः ।
चन्द्रविन्दुमयं बीजं कूर्मबीजं इतीरितम् ॥२८॥
स्थापयेदासनं तत्र पूजयेत् पटलकमात् ।
भूतशुद्धं ततः कृत्वा प्राणायामै ततः परम ॥२९॥

हे शाम्भवी ! एकपल उर्द्द की दाल, एकपल तण्डुल (चावल), आधातोला धृत, चौथाई तोला दधि तथा उत्कृष्ट सिद्धि के लिये एक तोला शर्करा को मिलाकर जो वर्लि द्रव्य बनता है, उसके द्वारा वलिदान करे ।

हे भद्रे ! अब पूजास्थान में कूर्मबीज लिखे । केवलमात्र चन्द्रविन्दु ही कूर्मबीज है अब वहाँ आसन लगाकर चतुर्थ पटल में उक्त विधि के अनुसार शूलन करे । प्रथमतः भूतशुद्धि करे, तदनन्तर प्राणायाम करे ॥२६-२९॥

अंजन्नायासं करन्यासं मातृकान्यासमेव च ।
यः कूर्यन्मातृकान्यासं स शिवो नात्र संशयः ॥३०॥
तत्रस्तु भस्मतिलकं रुद्राक्षं धारयेत्ततः ।
रुद्राक्षस्य च महात्म्यं भस्मनञ्चा शृणु प्रिये ॥३१॥

अंगन्यास, करन्यास तथा मातृकान्यास करे । मातृकान्यास करने वाले साक्षात् शिव हैं । यह निःमंदिग्ध है ।

अब भस्म का तिळक करे । रुद्राक्ष धारण करे । अब रुद्राक्ष के माहात्म्य को कहता हूँ । हे प्रिये ! सुनो ॥३०-३१॥

आग्नेयमुच्यते भस्म दुर्घगोमय सम्भवम् ।
 शोधयेन्मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं जपन् ॥३२॥
 शिरोदेशे ललाटे च स्कन्धयोर्ध प्रदेशके ।
 बाहवोः पाश्वद्वये देवि कण्ठदेशे हृदि प्रिये ।
 श्रतियुग्मे पृष्ठदेशे नाभी तुण्डे महेश्वरी ॥३३॥
 कर्पराद्वाहुपर्यन्तं कक्षे श्रीज्ञासु पार्वती ।
 सर्वज्ञे लेपयेत् देवौ किमन्यत् कथयामि ते ॥३४॥

दुर्घ तथा गोमय के द्वारा निर्मित भस्म को आग्नेय भस्म कहते हैं (गोदुर्घ तथा गाय के गोबर को मिलाकर जलाने से यह भस्म निर्मित होती है) इस भस्म को १०८ बार मूल मंत्र के जप द्वारा शोधित करे ।

हे महेश्वरी ! मस्तक, ललाट, स्कन्ध, भ्रूप्रदेश, बाहुद्वय, पाश्वद्वय, कण्ठ तथा हृदय में, उभय कर्ण में, पृष्ठदेश में, नाभि में, मुख, कन्धा से लेकर बाहुपर्यन्त लगाये । हे पार्वती ! इस प्रकार से सर्वांग में भस्म का लेपन करना चाहिये । अब इस विषय में ओर क्या कहा जा सकता है ॥३२-३४॥

मध्यमानामिकाङ्गुणेन तिलकं ततः ।
 तिलकं तिस्त्ररेखा स्यात् रेखानां नवधा भतः ।
 पृथिव्यग्निस्तथा शक्तिः क्रियाशक्तिर्भवेश्वरः ॥३५॥
 देवः प्रथमरेखायां भक्त्या ते परिकीर्तिः ।
 नमस्वांश्चेव सुभगे द्वितीया चैव देवता ।
 परमात्मा शिवो देव देवस्तृतीयायाश्च देवता ।
 एतान्नित्यं नमस्तुत्य त्रिपुण्ड्रं धारयेत् यदि ॥३६॥

तिलक में तीन रेखा करे । नी संहयक रेखायें तांत्रिक अंगीकृत करते हैं । ये देवतय के प्रतीक हैं—यथा पृथ्वी, अग्नि, तथा शक्ति (अथवा क्रियाशक्ति महेश्वर) ।

हे सुभगे ! प्रथम रेखा के देवता हैं महादेव । द्वितीय के देवता नभस्वान् हैं तथा तृतीय के देवता हैं परमात्मा शिव । इन्हें नमस्कार करे, तदनन्तर त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥३५-३६॥

महेश्वर व्रतमिदं कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो वा यतिस्तथा ॥३७॥

इस महेश्वर व्रत का अनुष्ठान करने से श्रेष्ठ सिद्धि मिलती है । जो कोई भी ब्रह्मचारी, गृहस्था, वनस्थ, अथवा यति हो वह सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥३७॥

महापातकसंघातैमुच्यते सर्वपातकात् ।

तथान्यक्षत्रविट्शूद्रा स्त्रीहत्यादिषु पातकैः ॥३८॥

वीर ब्राह्मण हत्याभ्यां मुच्यते सुभगेश्वरी ।

अमन्त्रेणापि यः कुर्यात् ज्ञात्वा च महिमोवृतिम् ॥३९॥

त्रिपुण्ड्र भाल तिलको मुच्यते सर्वपातकैः ।

परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्णणम् ॥४०॥

परनिन्दा परक्षेत्रे हरणं परपीडनम् ।

असत्य वाक्यं पैशून्यं पारुष्यं देवविक्रयम् ॥४१॥

कटसाक्षयं व्रतत्यागं कैतवं नोचसेवनम् ।

गो-मृगाणां हिरण्यस्य तिल कम्बलं वाससाम् ॥४२॥

अन्न धान्य कुशादीनां नीचेभ्योऽपि परिश्रहम् ।

दासीवेच्यासु कृष्णासु वृषलीसु नटीसु च ॥४३॥

रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च सङ्गमे ।

मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयम् ॥४४॥

इस प्रकार अनुष्ठान करने से महापातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । समस्त पाप समूह से मुक्ति मिल जाती है । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रीहत्या का पातक भी छूट जाता है । हे सुभगेश्वरी ! भस्मधारण की महिमा जानकर, विना मंत्रोच्चारण के ही जो भस्म लगाते हैं वे भी वीर तथा ब्राह्मण की हत्या से मुक्त हो जाते हैं । जिनके ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगा है, वे सर्वपातक समूह से मुक्त हैं । यहाँ तक कि

परद्रव्यापहरण, परस्त्रीगमन, परनिन्दा, अन्य के खेत जमीन का हरण, परपीड़न, असत्य तथा कठोर वचन, पिशुनता, देव विक्रिय, कूटसाक्ष्य, व्रत त्याग, कैतव, नीच की सेवा, गो-मृग-मुवर्ण-तिल-कम्बल-वस्त्र अन्न-धान्य-कुशादि का नीच व्यक्ति से दान लेना, दासी-वेश्या-कृष्णा-वृषली-नटी-रजस्वला-कन्या-विधवा के साथ संगम, आंस-चर्म-रस-लवण वेचना आदि पाप से मुक्ति मिल जाती है ॥३८-४४॥

एवं रुपाण्यसंख्यानि पापानि विविधानि च ।
सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ॥४५॥
शिव द्रव्यपहरणात् शिवनिन्दाच्च कुत्रचित् ।
निन्दायाः शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ॥४६॥

इस प्रकार असंख्य पाप त्रिपुण्ड्र धारण करने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं । शिवद्रव्यापहरण अथवा शिवनिन्दा करने से, किंवा शिवभक्त की निन्दा द्वारा जो पाप उत्पन्न होता है, वह प्रायश्चित्त से भी नष्ट हो सकता है ॥४५-४६॥

त्रिपुण्ड्रं शिरसा धृत्वा तत्कणादेव शुद्ध्यति ।
देवद्रव्यापहरणे ब्रह्मस्वहरणे च ॥४७॥

देवता का द्रव्य अपहरण करना अथवा ब्रह्मस्वापहरण से जो पाप लगता है, वह त्रिपुण्ड्र धारण के साथ-साथ नष्ट हो जाता है ॥४७॥

कुलान्यग्नय एवात्र विनश्यन्ति सदाशिवे ।
महादेवि महाभागे ब्राह्मणातिक्रमेण च ।
कुलरक्षा भवत्यस्मात् त्रिपुण्ड्रस्य च सेवनात् ॥४८॥
रुद्राक्षै यस्य देहेषु ललाटेषु त्रिपुण्ड्रकम् ।
यदि स्यात् स च चण्डालः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ॥४९॥
यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गंडाद्या सरितश्च याः ।
स्नातो भवति सर्वत्र यत्ललाटे त्रिपुण्ड्रकम् ॥५०॥

हे सदाशिवे ! हे महादेवी ! हे महाभागे ! ब्राह्मण का अपमान करने पर इसी जन्म में अपमानकारी विनाश को प्राप्त हो जाता है । इस स्थिति में भी त्रिपुण्ड्रधारण द्वारा वंशरक्षा हो सकती है । जिनके शरीर रुद्राक्ष तथा ललाट पर

त्रिपुण्ड्र है, वे चाण्डाल होने पर भी सर्वश्रेष्ठ हैं। जो ललाट पर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे इस मृत्युलोक में तीर्थ हैं और पवित्र नदी में स्नान करने के समान पवित्र हैं ॥४५-५०॥

सप्तकोटिमहामंत्रा उपमन्त्रास्तथैव च ।

श्री विष्णोः कोटि मन्त्रश्च कोटि मन्त्रः शिवस्य च ।

ते सर्वे तेन जप्ता च यो विभृति त्रिपुण्डकम् ॥५१॥

जो ललाट पर त्रिपुण्ड धारण करता है, उसे उस फल की प्राप्ति होती है, जो फल करोड़ बार विष्णु के महामंत्र जप द्वारा तथा शिव के करोड़ मंत्र जप द्वारा प्राप्ति होता है ॥५१॥

सहस्रं पुर्वं जातानां सहस्रं च जनिष्यताम् ।

स्ववंशजातान् मत्यनां उद्धरेत् यस्त्रिपुण्डकृत् ॥५२॥

षडैश्वर्य गुणोपेतः प्राप्य दिव्यवपुस्ततः ।

दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीगतसेवितः ॥५३॥

विद्याधराणां सिद्धानां गन्धवर्णाणां महौजसाम् ।

इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाकमम् ॥५४॥

जो त्रिपुण्ड धारण करता है उसके एक हजार पीढ़ी के पूर्व पुरुषों तथा एक हजार पीढ़ी के जन्म लेने वाले वंशजों का उद्धार हो जाता है।

महिमा आदि घड़ैश्वर्य, दिव्य शरीर प्राप्त होता है और वे दिव्य विज्ञान पर आरोहण करते हुये देवांजनाओं द्वारा सेवित हो जाते हैं।

विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व एवं महातेजस्वी इन्द्रादि के लोकों का वह क्रमशः
भोग करता है ॥५२-५४॥

भूक्त्वा भोगान् सुविपुलं प्रदेशानां पुरेषु च ।

ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र वल्पायुतं वसेत् ॥५५॥

विष्णुलोके च रमते आव्रह्णः शतायुषम् ।

शिवलोके ततः प्राप्य रमते कालमक्षयम् ॥५६॥

वहीं यथेच्छित भोग करते हुये अयुत कल्पों तक ब्रह्मा के पद पर प्रतिष्ठित होता है । तदनन्तर विष्णुलोक में १०० ब्रह्माओं के काल पर्यन्त विराजित रहकर अक्षय काल तक विवलोक में वास करता है ॥५५-५६॥

शिवसायुज्यमाप्नोति न स भूयोऽपि जायते ।

शैवे विष्णौ च सौरे च गाणपत्येषु पार्वती ॥५७॥

हे पार्वती ! शैव, वैष्णव, सौर तथा गाणपत्य अथवा किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति क्यों न हो, वे उसके द्वारा शिवसायुज्य प्राप्त कर लेते हैं । वे पुनः जन्म नहीं लेते ॥५७॥

शक्तिरूपा च या गौः स्यात् तस्या गोमयसम्भवम् ।

भस्म तेषु महेशानि विशिष्ठं परिकीर्तितम् ॥५८॥

शैवोऽपि च वरारोहे सागुण्यं वरवर्णिनी ।

शक्ती प्रशस्तमोक्षं हि भस्म यौवन जीवने ॥५९॥

अन्येषां गोकरीषेण भस्म शक्त्यादिकेष्वपि ।

सामान्यमेतत् सुश्रोणि विशेषं शृणु मत्प्रिये ॥६०॥

श्री शक्ति रूपा है । गोमय से निर्मित भस्म विशिष्ट शक्ति प्रदायिका होती है । हे महेशानी ! यह तन्त्रों में कहा गया है ।

हे वरवर्णिनी ! शैवगण सागुण्य प्राप्त करते हैं । शाकतों के लिये भस्म यौवन तथा जीवन देने वाली है । अन्य लोगों के लिये भी यह हितकारी होती है । हे सुश्रोणी ! यह इसका सामान्य लक्षण गुण कहा गया । अब इसके विशिष्ट गुणों को सुनो ॥५८-६०॥

करीषभस्मादनघे होमं भस्म महाफलम् ।

होमं भस्मात् कोटिगुणं विष्णुयोगं महेश्वरी ॥६१॥

शिव होमं तद्विगुणं तस्मात् शृणु सुन्दरी ।

स्वीयेष्ट देवता होम सनन्तं प्रियवादिनी ॥६२॥

तन्माहात्म्यमहं वक्तुं वक्त्रोषिशतैरपि ।

न समर्थो योगमार्गं किमन्यत् कथयामि ते ॥६३॥

हे अनधे ! करीष भस्म की तुलना में होम की भस्म का फल अधिक कहा जाता है । हे महेश्वरी ! होम भस्म की तुलना में विष्णुयोग की भस्म में कोटिगुण फल है । तदपेक्षा द्विगुणित फल शिवयोग की भस्म का है । हे सुन्दरी ! हे प्रियवादिनी ! अपने इष्ट देवता के लिये होम करने से उत्पन्न भस्म अनन्त फलप्रदादिका कही गयी है । सैकड़ों-करोड़ों मुख के द्वारा भी इसका माहात्म्य नहों कहा जा सकता । योग मार्ग के सम्बन्ध में अधिक व्या कहूँ ॥६१-६३॥

होमः कलियुगे देवि जम्बूदीपस्य वर्षके ।
 भारतास्ये महाकाली दशांशं क्रमतः शिवे ॥६४॥
 नास्तिकास्ते महामोहे केवलं होमपाचरेत् ।
 लक्षस्वाप्ययुतस्वापि सहस्रम्बा वरानने ॥६५॥
 अष्टाविकशतस्वापि काम्यहोमं प्रकल्पयेत् ।
 नित्यहोमच्च कर्तव्यं शक्त्या च परमेश्वरी ॥६५॥
 प्रजपेत्तियं पूजायामष्टोत्तरं सहस्रकम् ।
 अष्टोत्तरशतं यापि अष्टं पञ्चाशतं चरेत् ॥६७॥

हे महाकाली ! हे देवी ! कलियुग में जम्बूदीपान्तर्गत् भारतवर्ष में क्रमशः दशांश हवन फलप्रद होता है । हे महामोहे ! जो नास्तिक है, वे केवल होम का अनुष्ठान करें । हे वरानने ! उस होम को लक्ष, अयुत अथवा सहस्र भी किया जा सकता है । कामनापूर्ति के लिये अष्टोत्तरशत भी किया जा सकता है । हे परमेश्वरी ! शक्ति के अनुमार नित्य होम का अनुष्ठान करना चाहिये ।

नित्यपूजा काल में अष्टोत्तर सहस्र (१००८) जप करे । यदि इतना न कर सके तब १०८ या ५८ जप करे ॥६४-६७॥

अष्टविशत् संख्यकम्बा अष्टाविंशतिमेव च ।
 अष्टादश द्वादशच्च दशाष्टौ च विधानतः ॥६८॥
 होमञ्चवं शहेशानि एतत्संख्याविधानतः ।
 एवं सर्वत्र देवेशि नित्यकर्म महोत्सवः ॥६९॥

अथवा ३८, २८ जप करे । इतना भी न कर सके तब १८, १२, १० अथवा ८ जप अवश्य करे । हे महेशानी ! जप की संख्या के अनुसार होम करे । हे देवेशी ! इस प्रकार सर्वदा-सर्वत्र नित्य कर्म स्वरूप महान् उत्सव का अनुष्ठान करता रहे ॥६८-६९॥

इत्थं प्रकारं यत् भस्म अङ्गे संलिप्य साधकः ।

मालाञ्चैव महेशानि नरास्थदभूत पूजितम् ॥७०॥

इस प्रकार से जो भस्म निर्मित होती है, उसका अपने अंगों में लेपन करके माला धारण करे मनुष्य के अस्थि की माला पहने ॥७०॥

गले दद्याद्वारायोहे शक्तश्चेत् दिव्यनासिके ।

रुद्राक्ष माल्यं संधार्य ततः श्रृणु भस्म प्रिये ॥७१॥

एवं कृत्वा तथा सार्द्धं पितृभूमौ स्थितं मया ।

सुभगे श्रृणु सुश्रोणि रुद्राक्षं परमं पदम् ॥७२॥

हे दिव्य मासिका वाली ! नरास्थ की माला के अनन्तर रुद्राक्ष की माला पहने । हे प्रिये ! ऐसी माला धारण करके मैं तुम्हारे साथ दमशान में रहता हूँ । हे सुश्रोणी ! हे सुभगे ! साधक का परमपद है रुद्राक्ष ॥७१-७२॥

सर्वपायक्षयकरं रुद्राक्षं ब्रह्मणीश्वरि ।

अभुक्तो वापि भुक्तो वा नीचा नीचतरोऽपि वा ॥७३॥

हे ब्रह्मणीश्वरी ! रुद्राक्ष सर्व पापों का नाश करता है । भोजन किये बिना, भोजन करके, जिस किसी भी अवस्था में, नीच व्यक्ति भी ॥७३॥

रुद्राक्षं धारयेत् यस्तु मुच्यते सर्वपात्रकात् ।

रुद्राक्षधारणं पुण्यं कैवल्य सदृशं भवेत् ॥७४॥

रुद्राक्ष धारण के द्वारा समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । यह अत्यन्त पुण्य कर्म है । इसे धारण करना ही मोक्ष के समान स्थिति कही गयी है ॥७४॥

महाव्रतमिदं पुण्यं त्रिकोटितीर्थं संयुतम् ।

सहस्रं धारयेत् यस्तु रुद्राक्षाणां शुचिस्मिते ॥७५॥

यह तीन कोटि तीर्थ भ्रमण के समान पृथ्य दायक ब्रत है । हे शुचिस्ति ! जो साधक सहस्र रुद्राक्ष धारण करता है वह—॥७५॥

तं नवन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ।
अभावे तु सहस्रस्य वाहवोः षोडश षोडशः ॥७६॥

समस्त देवगणों द्वारा उसी प्रकार से प्रणम्य हो जाता है, जैसे रुद्र ! अर्थात् उसमें तथा रुद्र में कोई भेद ही नहीं रह जाता । सहस्र रुद्राक्ष के अभाव में दोनों भुजाओं में १६-१६ ही धारण करे ॥७६॥

एकं शिखायां कवचयोद्वादश द्वादशं क्रमात् ।
द्वात्रिशत् कण्ठदेशे तु चत्वारिंशत् शिरे तथा ॥७७॥

एक रुद्राक्ष शिखा में, द्वादश-द्वादश कवच में, ३२ (द्वात्रिशत्) रुद्राक्ष कण्ठ में और मस्तक पर ४४ (चत्वारिंशत्) रुद्राक्ष धारण करें ॥७७॥

उभयोः कर्णयोः षट् षट् हृदि अष्टोत्तर शतम् ।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुप्रवत् स च पूजितः ॥७८॥

६-६ रुद्राक्ष उभय कर्णों में, हृदय पर १०८ रुद्राक्ष धारण करे । ऐसा साधक जगत् में रुद्र के समान पूजित हो जाता है ॥७८॥

मुक्ता-प्रवल-स्फटिकैः सूर्येन्दु-मणि कांच्चनैः ।
समेतान् धारयेत यस्तु रुद्राक्षान् शिव एव सः ॥७९॥

मुक्ता, प्रवल, स्फटिक, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि अथवा सुवर्ण के द्वारा ग्रथित रुद्राक्ष जो-जो धारण करता है, वह मनुष्य माथात् शिव के समान है ॥७९॥

केवलानपि रुद्राक्षान् यो विभक्ति वरानने ।
तं न स्पृशन्ति पापानि तिमिराणीव भास्करः ॥८०॥

है वरानने ! जो साधक केवल रुद्राक्ष धारण करता है, वह पापस्फर्दा से रक्षित हो जाता है । उसी प्रकार जैसे कि अंधकार कभी भी सूर्य स्पर्श नहीं कर सकता ॥८०॥

रुद्राक्षमालया जप्तो भन्त्रोऽनन्त-फलप्रदः ।
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षं एकोऽपि वरवर्णिनी ।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्ड्र रहितं यथा ॥८१॥

रुद्राक्ष माला द्वारा जप करने से अनन्त फल मिलता है । हे वरवर्णिनी !
जिसके अंगों में एक भी रुद्राक्ष नहीं है उसका जन्म उसी प्रकार निरर्थक है,
जैसे त्रिपुण्ड्र रहित का होता है ॥८१॥

रुद्राक्षं मस्तके बद्धां शिर-स्नानं करोति यः ।
गंगास्नान-फलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥८२॥

जो व्यक्ति मस्तक पर रुद्राक्ष बन्धन करके सिर से स्नान करता है, उसे
गंगा स्नान के समान फल मिल जाता है । यह निःसंदिग्ध है ॥८२॥

रुद्राक्षं पूजयेत् यस्तु बिना तोयाभिषेचनैः ।
यत् फलं शिव पूजायां तदेवाप्नोति निश्चितम् ॥८३॥

जो जलाभिषेक से रुद्राक्ष पूजन करता है, उसे शिव पूजा जैसा फल प्राप्त
होता है । यह भी निःसंदिग्ध है ॥८३॥

एकवक्त्रैः पंचवक्त्रैः-स्त्रयोदश-मुखैस्तथा ।

चतुर्दश-मुखैर्जर्जप्त्वा सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥८४॥

एकमुखी, पंचमुखी, त्रयोदशमुखी अथवा चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष से जप करने
पर सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥८४॥

किं बहूक्त्या वरारोहे कृत्वा गतिकमदभुतम् ।

रुद्राक्षं यत्नतो धृत्वा शिव एव स साधकः ॥८५॥

हे वरारोहे ! अधिक कहने का क्या प्रयोजन ! रुद्राक्षधारी शिव के समान
हो जाता है ॥८५॥

भस्मना तिलेकं कृत्वा पश्चात् रुद्राक्ष-धारणम् ।

प्राणायामं ततः कृत्वा संकल्प्योषास्य साधकः ॥८६॥

भस्म का तिलक लगाकर रुद्राक्ष धारण करे । तदनन्तर साधक प्रणायाम और संकल्प के द्वारा उपासना प्रारम्भ करे ॥८६॥

मूलमंत्र-सिद्धिकामः कुर्याच्च वर्ण-पूजनम् ।

षट्त्रिंशत्-बण-मालाचर्चा विस्तारोन्नति-शालिनी ॥८७॥

मूलमंत्र की सिद्धि के लिये वर्णमाला की पूजा करे । हे विस्तारोन्नति-शालिनी ! ३६ वर्णमालाओं का पूजन विहित है ॥८७॥

बिलिख्य चन्दनं शुद्धं सर्ववण्टिमके घटे ।

सर्वविवर-संयुक्तान् दिलिख्य मातृकाकाशरात् ॥८८॥

सर्ववण्टिमके घट में विशुद्ध चन्दन का लेपन करके सर्व धर्मयों के साथ मातृकाकाशरों को लिखे । (घट का तात्पर्य पंचभूतात्मक देह भी है । अर्थात् सर्ववर्णयुक्त इस शरीर में मातृकाकाशरों की भावना करना चाहिये) ॥८८॥

शुरु सम्पूज्य विधिवत् घट-स्थापनमाचरेत् ।

पंचाशन्मातृका-बणान् पूजयेत् विभवक्रमात् ॥८९॥

विधिपूर्वक गुहपूजा करके घट स्थापन करे । तदनन्तर अनुलोम क्रम से ५० मातृकाओं का पूजन करे ॥८९॥

सत्त्व स्वरूपिणी ध्यानम्

शुब्ल-विद्युत् प्रतीकाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।

कृष्णाम्बर-परीधानां शुल्क-वस्त्रोत्तरीयिणीम् ॥९०॥

सत्त्वस्वरूपिणी ध्यान—प्रकुल चित्त से पंचोपचार पूजन समाप्त करके ध्यान करे । विद्युत के समान भास्वर प्रकाशयुता, चपलनयना, द्विभुजा, कृष्णाम्बर परिधान युक्ता तथा चुभ बसन द्वारा रचित उत्तरीय वाली—॥९०॥

नानाभरण-भूषाद्यां सिद्धूर-तिलकोज्वलाम् ।

कटाक्ष-विशिखोद्दीप्त अञ्जनाचिंजत-लोचनाम् ॥९१॥

मंत्रसिद्धि प्रदां नित्यां ध्यायेत् सत्त्व-स्वरूपिणीम् ।

रक्त-विद्युत् प्रतीकाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ॥९२॥

रजः स्वरूपिणी ध्यानम्

शुक्लाम्बर-परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिणीम् ।
 नानाभरण-भूषाड्यां सिन्दूर तिलकोज्वलाम् ॥६३॥
 कटाक्ष विशिखोदीप्त-अञ्जनाञ्जित-लोचनाम् ।
 मन्त्र-सिद्धि-प्रदां-नित्यां ध्यायेत् रजः स्वरूपिणीम् ॥६४॥

जो विविध आभरण-भूषणादि के द्वारा सुशोभिता हैं, जो सिन्दूर तिलक के द्वारा उज्वल बनी हैं, जो कटाक्ष बाण से उद्दीप्त हैं, जिनके नेत्र अञ्जन से चर्चित हैं, वे सतत मन्त्र सिद्धिप्रदा, लोहित विद्युत समप्रभ, द्विभुजा, चपल नयना तथा सत्त्वस्वरूपिणी हैं ।

रजः स्वरूपिणी ध्यान—जो शुल्क वस्त्र परिहिता, कृष्णवर्ण वस्त्र के उत्तरीय को धारण करने वाली विविध आभूषण और आभरणों से शोभयमान, सिन्दूर तिलक द्वारा सुशोभित, कटाक्ष बाणों से उद्दीप्त अंजन चर्चित नेत्र वाली सतत मन्त्र सिद्धिप्रदा रजः स्वरूपिणी का ध्यान करे ॥६४॥

तमः स्वरूपिणी ध्यानम्

अमर-अमर-संद्वाशां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।
 रक्त-वस्त्र परीधानां कृष्ण-वस्त्रोत्तरीयिणीम् ॥६५॥
 नाना भरण-भूषाड्यां सिन्दूर-तिलकोज्वलाम् ।
 कटाक्ष-विशिखोदीप्त-भू-लता-परिसेविताम् ॥६६॥
 मन्त्र सिद्धि-प्रदां नित्यां ध्यायेत्तमः स्वरूपिणीम् ।

जिनका वर्ण अमर के समान है, जो चपल नयना तथा द्विभुजा हैं, जो रक्त वस्त्र धारण करनेवाली और काले कपड़े के उत्तरीय से शोभित हैं, जो नाना आमरण भूषण से युक्त और सिन्दूर तिलक से मणित हैं, जिनका कटाक्ष उद्दीप्त है, जो वृक्षों की शाखा तथा लताओं से परिसेविता है, जो मन्त्रदायिनी हैं, उन तमः स्वरूपा वर्णमाला का ध्यान करे ॥६५-६६॥

ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा त्रिगुणां पूजयेत् क्रमात् ॥६७॥

इस प्रकार वर्णमालाओं का (त्रिगुणा वर्णमाला का) यथाक्रम से पूजन करे । उन्हें अर्च्य, पादा आदि प्रदान करे ॥९७॥

३५ अंड्हार-रूपिण्यै नमः पादैःप्रपूजयेत् ।
आदि-ध्यानेन सुभगे यजेत् सत्व-मयीं षराम् ॥६८॥

'३५ अंगार रूपिण्यै नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुये पादादि के द्वारा पूजन करे । हे सुभगे ! प्रथम ध्यान के द्वारा सत्वमयी वर्णमाला का ध्यान करे । ॥९८॥ (इसमें १७ वर्ण हैं)

३६ कंड्हार-रूपिण्यै नमः पाद्यादिभिर्यजेत् ।
क्रमात् सप्त-दशार्णि हि द्वितीयं ध्यानमाचरन् ॥६९॥

'३६ कंकार रूपिण्यै नमः' मन्त्र के द्वारा पाद्यादि से पूजन करे । और यथाक्रमेण सप्तदश वर्णयुता रजः मयी वर्णमाला का ध्यान करें ॥९९॥

३७ दङ्कार रूपिण्यै नमः पाद्यादिभिर्यजेत् ।
क्रमात् सप्त-दशार्णि हि तृतीयं ध्यानमाचरम् ॥१००॥

'३७ दङ्कार रूपिण्यै नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुये पाद्य आदि से तृतीया वर्णमाला अर्थात् तामसी वर्णमाला का पूजन करने के परिचात् ध्यान करे ॥१००॥

एवं क्रमेण पञ्चाशत्-वर्णि हि परिपूजयेत् ।
इति ते कथितः भद्रे पञ्चाशद्वर्णपूजनम् ॥१०१॥

इस क्रम से पञ्चाशत् (५०) वर्णों का पूजन करे । हे भद्रे ! ५० वर्णों की पूजा विधि का उपदेश तुमको दिया ॥१०१॥

वर्णनां पूजनात् भद्रे देव-पूजा प्रजायते ।
अणिमाद्यष्ट-सिद्धिनां पूजा स्यात् वर्ण-पूजनात् ॥१०२॥

हे भद्रे ! वर्णमाला पूजन ही देव पूजन है । इस पूजन के द्वारा अणिमा-गरिमा ग्रंभूति अष्ट सिद्धि की भी पूजा हो जाती ॥१०२॥

सप्त-कोटि-महाविद्या उपविद्या तथैव च ।

श्री विष्णोः कोटि-मंत्रश्च कोटि-मंत्रः शिवस्य च ॥१०३॥

सप्तकोटि महाविद्या, उपविद्या, श्री विष्णु के कोटिमंत्र तथा शिव के कोटिमंत्र—॥१०३॥

पूजनात् पूजितं सर्वं वर्णानां सिद्धि-दायकम् ।

प्रथमं प्रणवं दत्त्वा सहस्रं कुण्डली-मुखे ॥१०४॥

आदि की भी पूजा वर्णपूजा से ही सम्पन्न हो जाती है । सर्वप्रथम कुण्डली मुख में एक सहस्र प्रणव का उपकार प्रदान करे ॥१०४॥

मूलविद्यां ततो भद्रे सहस्रा-युगलं जपेत् ।

ततस्तु सुभगे मातर्ज्जयेच्च दीपनी-पराम् ॥१०५॥

इसके अनन्तर दो सहस्र मूलमंत्र का जप करे । हे सुभगे ! तदनन्तर उत्कृष्ट दीपनी संज्ञक मंत्र का जप करे ॥१०५॥

आदौ गायत्रीमुच्चार्य मूलमंत्रं ततः परम् ।

प्रणवञ्च ततो भीमे त्रयाणां सहयोगतः ॥१०६॥

प्रथमतः गायत्री का उच्चारण करके मूलमंत्र जपे । हे भीमे ! इसके पश्चात् प्रणव का उच्चारण करे । गायत्री, मूलमंत्र तथा प्रणव का मिलाकर जप करना चाहिये ॥१०६॥

सदैवेनां महेशानि दीपनीं पीरकीर्त्तिम् ।

एतामपि सहस्रञ्च प्रजपेत् कुण्डली मुखे ॥१०७॥

हे महेशानो ! इस प्रकार इन तीनों का एक साथ मिलित जप ही दीपनी जप है । कुण्डली मुख में एकमात्र दीपनी का ही जप करे ॥१०७॥

प्रणवादौ जपे द्विधां गायत्रीं दीपनीं पराम् ।

गायत्री शृणु वक्ष्यामि अं डं त्रं णं नं मं से प्रिये ॥१०८॥

‘अं डं त्रं णं नं मं’ ही गायत्री है । हे वर्णनी ! प्रणव के आदि में गायत्री मंत्र (दीपनी विद्या का) जप करे ॥१०८॥

षडक्षर मिदं मंत्रं गायत्री समुदोरितम् ।

अस्याव्यच फलमाप्नोति तदैव वर्णिनी ॥१०६॥

इसी षडक्षर मंत्र को गायत्री कहते हैं । इस गायत्री जप का फल तत्काल मिलता है ॥१०९॥

स्मरणं कुण्डलीमध्ये मनसी उन्मनी सह ।

सहस्रारे कर्णिकायां चन्द्रमण्डल-मध्यगाम् ॥११०॥

(गायत्री को) कुण्डलिनी में उन्मनी के साथ स्मरण करे । सहस्रार की कर्णिका में जो चन्द्रमण्डल विराजित है उस चन्द्र मण्डल के मध्य में स्थिता ॥११०॥

सर्व-संकल्प-रहिता कला सप्तदशी भवेत् ।

उन्मनी नाम तस्य हि भव-पाश-निकृत्तनी ॥१११॥

समस्त संकल्प रहिता सप्तदशी कला को ही उन्मनी कहते हैं । यह भव बन्धन कर्त्तनकारिणी है ॥१११॥

उन्मन्दा सहितो योगी न योगी उन्मनीं विना ।

बुद्धिमंकुश-संयुक्तामुन्मनीं कुसुमान्विताम् ॥११२॥

जो उन्मनी में विराजित हैं, वे ही योगी हैं । इस अवस्था से रहित को योगी नहीं कहा जा सकता । बुद्धिरूपी अंकुश से संयुक्ता उन्मनी कुसुमान्वित ॥११२॥

उन्मनीच्च मनोवर्णं स्मरणात् सिद्धि-दायिनीम् ।

स्मरते कुण्डली-योगादमृतं रक्त-रोचिषम् ॥११३॥

सिद्धिप्रदायिनी उन्मनी तथा मन्त्रवर्ग का स्मरण करते हुये लोहित कान्ति युक्त अमृत का कुण्डली योग के द्वारा स्मरण करो ॥११३॥

उन्मनी-कुसुमं तनु ज्यें परमदुर्लभम् ॥११४॥

सिद्धिदायिनी उन्मनी कुसुमान्वित होकर अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है ॥११४॥

हंसं नित्यमनन्तं मध्यमंगुणं स्वाधारतो निर्गता ।

शक्तिः कुण्डलिनी समस्त-जननी हस्ते गृहीत्वा च तम् ।

वान्ती स्वाश्रममर्क-कोटि-रुचिरा नामामृतोल्लासिनी ।

देवीं तां गमनागमैः-स्थिर-मतिध्यर्यित् जगन्मोहिनीम् ॥११५॥

सबकी जलनी कुण्डलिनी देवी कोटिसूर्य के समान दीसि युक्त हैं । वे सर्वदा नामामृत से उल्लासिनी होती रहती हैं । वे मूलाधार से निर्गत होकर अनन्त मध्यमण्ड हंस का बमन करती रहती हैं, सुषुम्ना मार्ग से निरन्तर हं तथा सः शब्द इवास का आश्रय लेकर आते-जाते रहते हैं । यह हंस ही जीवात्मा है । जगत् को मोहित करने वाली कुण्डलिनी देवी का अहोरात्र ध्यान करो ॥११५॥

इति ते कथितं ध्यानं मृत्युञ्जयमनामयम् ॥११६॥

विना मनोन्मनी मंत्रं बिना ध्यानं जपं वृथा ।

ततः संङ्कृत्य ध्यात्वैव मलमन्त्रस्य सिद्ध्ये ॥११७॥

गायत्रीमयुतं जप्त्वः तदद्वै प्रणवं जपेत् ।

दीपनं प्रणवस्याद्वै जपेत् पंच-दिनावधि ॥११८॥

यहीं है निरोग कारक मृत्युञ्जय ध्यान ।

उन्मनी मंत्र के अभाव में, तथा ध्यान के अभाव में जप निष्फल हो जाता है । अतएव मूलमन्त्र सिद्धि के लिये संकल्प करके अयुत संख्यक गायत्री का जप करे । इसे करने के अनन्तर इससे आधी संख्या में प्रणव जप करे । प्रणव से आधी संख्या में पाँच दिन तक दीपन विद्या का जप करे ॥११६-११८॥

शूद्राणां प्रणवं देवि चतुर्दश-स्वर-प्रिये ।

नाद-विन्दु-समायुक्तं स्त्रीणाञ्चैव वरानने ॥११९॥

हे देवि ! शूद्र तथा स्त्री के लिये नादविन्दु युक्त चतुर्दश स्वर का ही प्रणव के स्थान पर उच्चारण करना चाहिये । हे वरानने ! उन्हें प्रणव के स्थान पर नाद-विन्दु समायुक्त चतुर्दश स्वर का जप करना विहित है, यथा—अं आं इं इं उं ऊं ऊं ऊं लं लं एं एं ओं ओं ॥११९॥

मनौ स्वाहा च या देवी शूद्रोच्चार्या न संशयः ।

होमकार्ये महेशानि शूद्रः स्वाहां न चोच्चरेत् ॥१२०॥

मंत्र में स्वाहा का उच्चारण शूद्र भी कर सकते हैं, परन्तु हे महेशानी ! होम का अनुष्ठान करते समय शूद्रगण को स्वाहा का उच्चारण नहीं करना चाहिये ॥१२०॥

मन्त्रोप्युहो नास्ति शूद्रे विपबीजं बिना प्रिये ।
गणपत्यादौ यत् दत्तं वलिदानं दिने-दिने ॥१२१॥

प्रणवातिरिक्त कोई भी मंत्र शूद्र के लिये नहीं है । प्रतिदिन गणेश के लिये वलिदान देना चाहिये ॥१२१॥

तेनैव वलिना भद्रे हविष्यं सम्मतं सदा ।
शेष इष्टं प्रपूज्याथ हविष्याशी स्त्रिया सह ॥१२२॥

सर्वदा इसी वलिदान दत्त अन्त के द्वारा हविष्य बनाना तांत्रिक के लिये उचित है । इसके पश्चात् इष्ट पूजा करके पत्नी के साथ हविष्याशी हो जाये ॥१२२॥ (परन्तु स्त्री को हविष्याशी नहीं होना चाहिये, जैसा श्लोक संख्या १२५ में अंकित है)

जापकस्य च यन्मन्त्रमेकवर्णं ततः प्रिये ।
तस्य पत्नी शक्तिरूपा प्रत्यहं ब्रजयेत् वदि ॥१२३॥
तदा फल मवाप्नोति साधकः शक्ति-संज्ञतः ।
शक्तिहीने भवेद्दुःखं कोटि-पुरश्चरणेन् किम् ॥१२४॥

हे प्रिये ! जिस जपकर्ता का एक वर्णात्मक मंत्र है, उसकी शक्तिरूपिणी पत्नी को भी उसी मंत्र का नित्य जप करना चाहिये ।

यदि साधक की शक्तिरूपा पत्नि उस एक वर्ण मन्त्र का जप करती है, उस स्थिति में साधक को भी शक्ति संग के कारण फल लाभ होता है । शक्ति के अभाव में दुःख मिलता है । वह दुःख करोड़ों पुरश्चरणों द्वारा भी खण्डित नहीं होता ॥१२३-१२४॥

साधकस्य हविष्याशी साधिका तद्विर्जिता ।
यथेच्छाभोजनं तस्यास्ताम्बूल-पूरितानना ॥१२५॥

तानाभरण वेशाद्या धपामोदन-मोदिता ।
शिव-हीना तु या नारी दूरे तां परिवर्जयेत् ॥१२६॥

साधिका को हविष्याशी होना चाहिये । साधिका को हविष्याशी नहीं होना चाहिये । यथेच्छा भोजन करके ताम्बूल से मुख को आपूरित करे ।

नाता आभरण-वेशभूषा द्वारा साजसज्जा करके धूप प्रभृति सुगम्बि से सर्वदा वह साधिका आमोदिता हो । शिवहीन नारी के सान्तिष्य का वर्जन करे । ॥१२५-१२६॥

श्री देवयुवाच—

गायत्री-जपकाले तु साधिका कि जपेत् प्रभो ॥१२७॥

श्री देवी कहती है—हे प्रभो ! गायत्री जपकाल में साधिका किस मन्त्र को जपे ? ॥१२७॥

श्री शिव उचाच—

गायत्रीमजपा—विद्यां प्रजपेत् यदि साधिका ।

पूर्वोक्तेन विधानेन ध्यात्वा कृत्वा च पूजनम् ॥१२८॥

श्री शिव कहते हैं—यदि साधिका अजपा गायत्री का जप करे (हंसः ही अजपा गायत्री है) उस स्थिति में उसे पूर्वोक्त विधि से पूजन तथा व्यान करना चाहिये ॥१२८॥

मानसं परमेशानि जपेतद्गतमानसा ।

ततः पष्टदिनं प्राप्य प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥१२९॥

हैं परमेशानी ! इष्टदेवता से तद्गत चित होकर मानस जप करे और उसके पश्चात् छठे दिन प्रातः स्नान करे ॥१२९॥

कुंकुमागुरु-पंड्वेन कस्तूरी-चन्दनेन च ।

कूर्मबीजं लिखेत् भद्रे अथवा श्वेत चन्दनैः ॥१३०॥

हे भद्रे ! कुकुम तथा अगुरु तथा चन्दन द्वारा अथवा केवल श्वेत चन्दन से कूर्मबीज लिखना चाहिये ॥१३०॥

तत्रासनं समास्थाय विशेत् साधकसत्रिधौ ।
एवं विधाय या साध्वी साधकोऽपि प्रसन्नधीः ॥१३१॥

वह साध्वी साधिका वहाँ आसन स्थापन करके साधक के साथ बैठे और उसे साधक भी प्रसन्न मन से अंगीकृत करे ॥१३१॥

संकल्प्य विधिना भवत्या मूलमंत्रस्य सिद्ध्ये ।
लक्षं जपेत् पुरश्चर्या-विधौ विधि विधानतः ॥१३२॥
तद्विधानं वदामीशे-श्रुत्वा त्वमवधारय ॥१३३॥

मूलमंत्र की सिद्धि के लिये संकल्प करके विधिपूर्वक मूलमंत्र का जप लक्ष बार करे । हे ईश ! इसका विधान मैं कहता हूँ, तुम उसका श्रवण एवं अवधारण करो ॥१३२-१३३॥

ॐ ॐ कं हुं भं सं देवि-प्रातःस्नानोत्तरं परम् ।
दशधा प्रजपेन्मन्त्रं जिह्वा-शोधन-कारकम् ॥१३४॥

हे देवि ! पहले प्रातः स्नान करे । तदनन्तर जिह्वाशोधनकारी ॐ ॐ कं हुं अं सं मन्त्र का दस बार जप करे ॥१३४॥

ततश्च प्रजपेन्मन्त्रं मौनी मध्यन्दिनावधि ।
तस्य वामे तस्य पत्नी तस्य एकाक्षरं जपेत् ॥१३५॥

तत्पश्चात् मध्य दिवस (मध्याह्न) तक मौन धारण करके मन्त्र जप करे । साधक के वामभागस्थ उसकी पत्नी भी एकाक्षर मन्त्र का जप करे ॥१३५॥

साधकः शिवरूपश्च साधिका शिवरूपिणी ।
अन्योन्य-चिन्तनाच्चैव देवत्वं जायते ध्रुवम् ॥१३६॥
अदावन्ते च प्रणवं दत्वा मन्त्रं जपेत् सुधीः ।
दशधा वा सप्तदशं जप्त्वा मन्त्रं जपेत्तुसः ॥१३७॥

साधक शिवरूप है, साधिका शक्तिरूपा है । पारस्परिक रूप से एक दूसरे का चिन्तन करते से देवत्व लाभ हो जाता है । (साधक साधिका का और साधिका साधक का चिन्तन करे ॥१३६॥

साधक मूलमंत्र के साथ आदि एवं अन्त में प्रणव युक्त करके जप करे । साधक प्रथमतः १० बार अथवा १७ बार जप करते हुये (प्रणव का) प्रवान जप प्रारम्भ करे ॥१३७॥

एवं हि प्रत्यहं कुर्यात् यावल्लक्षं समाप्यते ।
 प्रातःकाले समारम्भ्य जपेन्मध्यन्दिनावति ॥१३८॥
 द्वितीय-प्रहरादूर्ध्वं नित्य-पूजादिकं चरेत् ।
 स्नानं कृत्वा ततो धीमान् हविष्यं वुभुक्ते ततः ।
 ततपत्नी शक्तिरूपा च पतिव्रत्य-परायणा ।
 तस्या चेच्छा भवेत् येषु वुभुजे पानभूषिता ॥१३९॥

प्रातःकाल से प्रारम्भ करके मध्याह्न तक जप करे । इस प्रकार जब तक एक लाख जप पूर्ण न हो तब तक जप करता रहे ।

द्वितीय प्रहर के उद्बंकाल में नित्य पूजादि करे । वुद्धमान साधक हविष्यान्न का भोजन स्नान के पश्चात् करे । शक्तिरूपा पातिव्रत्य परायणा साधक पत्नी कारण पान करके इच्छानुरूप भोजन करे । (उसके लिये हविष्यान्न का विवान नहीं है) ॥१३८-१३९॥

दशदण्ड गते रात्रौ शश्यायां प्रजपेन्मनम् ।
 ताम्बूल पूरितमुखो धूपामोदन मोदितः ॥१४०॥

दशदण्ड रात्रि व्यतीत हो जाने पर ताम्बूलपूरित मुख करके तथा धूप की मुगन्ध से आमोदित होकर शश्या पर बैठ कर मन्त्र जप करे ॥१४०॥

वामे: श्रीशक्तिरूपा च जपेच च साधकाक्षरम् ।
 दक्षिणे साधकः सिद्धो दिशामाने जपेन्मनूम् ॥१४१॥
 आद्यन्त-गोपनं कृत्वा प्रत्यहं प्रजपेत् यदि ।
 ततः-सिद्धिमवाप्नोति प्रकाशाद्वानिरेव च ॥१४२॥

साधक के वामभाग में शक्तिरूपिणी पत्नी निविष्ट एकाग्र चित्त से मन्त्र जप करे और दक्षिण भागस्थ साधक स्वयं भी यदि आदि से अन्तर्पर्यन्त

गोपन रखते हुये जप करता है, तब उसे सिद्धि अवश्य मिलेगी । गोपनीयता न रखने पर हानि हो जाती है ॥१४१-१४२॥

मातृका-पुष्टितः कृत्वा चन्द्रविन्दु-समन्वितम् ।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्रमनुलोम-विलोमतः ॥१४३॥
जपादौ सुभगे त्रौढ़ प्रत्यहं प्रजपेन्मनूम् ।
तेन हे सुभगे मातः पुरश्चरणमीरितम् ॥१४४॥
समाप्ते पुरश्चरणे गुरुदेवं प्रपूजयेत् ।
तदा सिद्धो भवेन्मन्त्रो गुरुदेवस्य पूजनात् ॥१४५॥

चन्द्र विन्दु संयुक्त मातृका सम्पुष्टित करके प्रतिदिन अनुलोम-विलोम क्रम से मन्त्र जप करे । हे सुभगे ! इस प्रकार प्रतिदिन जप करना ही पुरश्चरण है । बदनन्तर (पुरश्चरण के पश्चात्) विधि पूर्वक गुरुपूजा करे । उपरोक्त विधि से पुरश्चरण करने पर गुरु पूजा द्वारा इस कलिकाल में भी मन्त्र सिद्धि हो जाती है ॥१४३-१४५॥

जम्बूद्वीपस्य वर्षे च कलिकाले च भारते ।
दशांशं वर्जयेत् भद्रे नास्ति होमः कदाचन ॥१४६॥
दशांशं कमतो देवि पञ्चाङ्गं विधिना कलौ ।
नाचरेत् कुत्रचिन्मन्त्री पुरश्चर्याविधि शुभे ॥१४७॥
भ्रमात् यदि महेशानि कारयेत् साधकोत्तमः ।
सिद्धिहानिर्महानिष्ठं जायते भारतेऽनघे ॥१४८॥

कलिकाल में कदापि दशांशक्रम से होमानुष्ठान नहीं होता । विविपूर्वकं पंचांगं युक्त पुरश्चरणानुष्ठान करे । जप संख्या के दशांश संख्यक मन्त्र के द्वारा होम, होम का दशांश तपैण, तपैण का दशांश अभिषेक और अभिषेक का दशांश त्राद्युण भोजन ही पंचांग है । हे महेशानी ! यदि कोई साधक आन्तिवशात् इस भारत वर्ष में उपरोक्त दशांग युक्त पुरश्चरण की प्रेरणा किसी व्यक्ति को देता है, तब उसकी सिद्धिहानि होती है और महान् अनिष्ट हो जाता है (अर्थात् भारतवर्ष के बाहर दशांश युक्त पंचांग से पुरश्चरणानुष्ठान करे परन्तु भारतवर्ष में इसका विधान नहीं है) ॥१४६-१४८॥

दशांशं जायते पूर्णं गुरुदेवस्य पूजनात् ।
अतएव महेशानि भक्त्या गुरुपदं यजेत् ॥१४६॥

गुरुदेव की पूजा करने पर दशांश स्वतः पूर्ण हो जाता है । अतएव है महेशानी ! भक्तिपूर्वक गुरु पूजन करे ॥४९॥

दक्षिणां गुरवे दद्यांत् सुवर्णं वाससान्वितम् ।
धानं तिलं तथा दद्यात् धेनुं वापि पदस्त्वनीम् ॥१५०॥

गुरुदेव को वस्त्रयुक्त सुवर्ण दक्षिणा दें । धान-तिल तथा दुग्धवती गौ का दान करे ॥१५०॥

अन्यथा विफलं सर्वं कोटिपुरश्चरणेन क्रिम् ।
कुमारी भोजनं सान्तं सर्वसिद्धिं प्रदायकम् ॥१५१॥
कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥
पूजनात् दर्शनात् तस्या रमणात् स्पर्शनात् प्रिये ।
सर्वं सम्पूर्णमायाति साधको भक्तिमानसः ॥१५२॥

अन्यथा समस्त कर्म विफल होगा । कोटि पुरश्चरण करने पर भी कोई कल नहीं हो सकेगा । कुमारी भोजन कराना सर्व सिद्धिप्रद है । जो कुमारी भोजन कराते हैं, वे त्रैलोक्य भोजन का फल प्राप्त करते हैं । हे प्रिये ! कुमारी का दर्शन, स्पर्शन और रमण यदि भक्तिपूर्वक किया जाये, तब साधक समस्त सिद्धि प्राप्त करते हैं ॥१५१-१५२॥

पुरश्चरणं सम्पन्नो वीर-साधनमाचरेत् ।
यस्यानुष्ठानं मात्रेण मन्दभाग्योपि सिध्यति ॥१५३॥

पुरश्चरण युक्त साधक वीराचार साधन में रत रहे । इस साधना से मन्द-भाग्य भी सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥१५३॥

पुत्रदारधनस्नेह - लोभमोहविवर्जितः ।
मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम् ॥१५४॥
एवं प्रतिज्ञामासाद्य गुरुमाराध्य यत्नतः ।
बलिदानादिना सर्वं मानसैः परिपूज्य च ॥१५५॥

स्त्री-पुत्र-वन-स्नेह-लोभ-मोह के राग से विवर्जित साधक प्रण करे कि मन्त्र
सिद्धि प्राप्त करूँगा अन्यथा देह त्याग करूँगा । ऐसी प्रतिज्ञा करके सयल गुरु
आराधना करे । बलि प्रभृति से सर्वतोभावेन मानस पूजन करे ॥१५४-१५५॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।

तस्मिन् पक्षे विशेषेण पुरश्चरणमाचरेत् ॥१५६॥

देव्या वोधं समारभ्य यावत् स्यात् नवमी तिथिः ।

प्रत्यहं प्रजपेमन्मन्त्रं सहस्रं भक्ति-भावेतः ॥१५७॥

होमपूजादिकं चैव यथाशक्त्या विधि चरेत् ॥१५८॥

सप्तम्यादौ विशेषेण पूजयेद्दिष्ट-देवताम् ।

अष्टम्यादि नवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ॥१५९॥

अष्टमी-नवमी रात्रौ पूजां कुर्यात् महोत्सवैः ।

इत्थं जपादिकं कुर्यात् साधकः स्थिरमानसः ॥१६०॥

इस प्रकार से मानस पूजा करते हुये, साधक को वर्ष में एक बार शरत्
कालीन पूजा करना चाहिये । इसके साथ ही उस पक्ष में एक बार विशेष रूप
से पुरश्चरण करे ।

देवी के बोधन से प्रारम्भ करके नवमी पर्यन्त भक्तिपूर्वक प्रतिदिन सहस्र
संख्यक इष्ट मंत्र जपे । यथा शक्ति होम पूजन करते हुये सप्तमी आदि तिथियों
में विशेषतः इष्ट देवाचर्चन करे । अष्टमी से नवमी पर्यन्त उपवास करे । अष्टमी
एवं नवमी की रात्रि में महान् उत्सव के साथ पूजन करे । साधक को स्थिर
चित्त होकर इस प्रकार से जपादि अनुष्ठान करना चाहिये ॥१५६-१६०॥

शक्त्या सह वारारोहे कुमारी-पूजनं चरेत् ।

दशम्यां पारणं कुर्यात्मत्स्त्र-मांसादिभिः प्रिये ॥१६१॥

हे वरारोहे ! शक्ति के अनुसार कुमारी पूजन करे । हे प्रिये ! दशमी
तिथि को मत्स्यमांसादि द्वारा पारण करे ॥१६१॥

एवं पुरक्रिया हृत्वा साधकः शिवतां व्रजेत् ।

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ॥१६२॥

शरत्काले महादेवा बोधने च महोत्सवे ।
प्रतिपत्तिथिमारम्भ नवम्यन्तं मय प्रिये ।
पूर्वोक्त-विधिना मन्त्री कुर्यात् पुरकिपां धिया ॥१६३॥

साधक एवंविधि पुरश्चरणानुष्ठान करके शिवत्व प्राप्त करते हैं । अथवा अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण किया जा सकता है । शरत्काल में शारदीया पूजा महोत्सव में महादेवी का बोधन प्रतिपदा से प्रारम्भ करके नवमी पर्यन्त पूर्वोक्त विधि से करे ॥१६२-१६३॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ॥१६४॥

शरत्काले चतुर्थीदि नवम्यन्तं सहस्रकम् ।

जपित्वा प्रत्यह भद्रे सप्तम्यादौ प्रपूजयेत् ॥१६५॥

अथवा और एक प्रकार से पुरश्चरण कहा गया है । शरत्कालीन चतुर्थी से लेकर नवमी पर्यन्त प्रतिदिन १००० जप करे । हे भद्रे ! मणमी-अष्टमी तथा नवमी को देवी पूजा करे ॥१६४-१६५॥

तथा सर्वोपचारस्तु वस्त्रालंडार-भूपणैः ।

महिषैश्छागलै मैषैश्चतुर्वर्गे लभेन्नरः ॥१६६॥

और वस्त्रालंकार भूपण, महिष, छाग तथा मैष प्रभूति उपचार द्वारा पूजा करने से साधक चतुर्वर्ग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त करता है ॥१६६॥

अष्टमी-सन्धि-बेलायां तेनैव विधिना पशुम् ।

छित्वा तस्योपरि स्थित्वा मध्य-नक्तं जपेत् सुधिः ॥१६७॥

अष्टमी सन्धि बेला में पशुओं का छेदन करके साधक उपर स्थित होकर मध्यरात्रि में जप करे ॥१६७॥

विभिर्धर्यनि-परो भूत्वा वाचिष्ठतां सिद्धिमाप्नुयात् ।

नवम्यां नियतं जप्त्वा पूजयित्वा यथाविधि ॥१६८॥

नवमी को विधिपूर्वक पूजा करके निरन्तर जप ध्यान करने से निर्भीक साधक अभीष्ट लाभ करता है ॥१६८॥

गुरवे दक्षिणां दद्यात् दक्षम्यां पारयेत्ततः ।
 एवं कृत्वा पुरश्चर्यां कि न साधयति साधकः ॥१६६॥
 अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
 अष्टमी-सन्धि-वेलायामष्टोत्तर-लता-गृहे ॥१७०॥

गृह को दक्षिणा प्रदान करके दक्षमी को पारण करे । इस प्रकार पुरश्चरण करने से समस्त वांछित की प्राप्ति हो जाती है ।

अन्य प्रकार से पुरश्चरण विधि कहते हैं । अष्टमी की सन्धि वेला में साधक १०८ लता के गृह में प्रवेश करके सयल्ल लतागण (शक्ति) का पूजन करे ॥१६९-१७०॥

प्रविश्य मंत्री विधिवतासामभ्यर्थ्य यत्नतः ।
 पूर्वोक्त-कल्पमासाद्य वृजादिकमथाचरन् ॥१७१॥
 केवलं कामदेवोऽसौ जपैषष्टोत्तरं शतम् ।
 महासिद्धौ भवेत् सद्यो लता-दर्शन-पूजनात् ॥१७२॥

पूर्वोक्त विधि से लता गृह में जाकर लता गण का पूजन करने पर केवल १०८ इष्ट मंत्र जप से ही साधक कामदेव तुल्य हो जाता है । लता गण के पूजन तथा दर्शन से साधक महासिद्ध हो जाता है ॥१७१-१७२॥

लता-गृहं श्रुणु प्रौढे कामकौतुक लालसे ।
 अष्टौ संख्या अतिक्रम्य नव-संख्यादि-सांस्किका ॥१७३॥
 यौवनादि-गुण्युर्युक्ताः साधिकाः कामं गविताः ।
 स्त्रियो यत्र गृहे सन्ति तदगृहं हि लता-गृहम् ॥१७४॥

हे प्रौढे ! काम कौतुक लालसा सम्भन्ने ! अब यह कहता हूँ कि लता गृह किसे कहते हैं ? अष्ट संख्या अतिक्रम करके नव संख्या युक्त यौवन प्रभृति गुण समन्विता कामर्गिता साधिका ही लता हैं । जहाँ ऐसी लता निवास करती है, वही है लता गृह ॥१७३-१७४॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
पूर्वोक्तानि महेशानि हेमन्तादि-गतौ चरेत् ।
साधकः पूर्णां प्राप्य सर्व-भोगेश्वरो भवेत् ॥१७५॥

अथवा अब अन्य प्रकार से पुरश्चरण करें । हे महेशानी ! हेमन्तादि अक्षतु में पूर्वोक्त विधि से अनुष्ठान करने पर समस्त भोगाधिपतित्व प्राप्त हो जाता ॥१७५॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ॥१७६॥
चतुर्दशीं समारम्भ यावदन्या चतुर्दशी ।
तावजज्ञप्ते महेशानि मन्त्री बांधिष्ठतमाप्नुयात् ॥१७७॥

अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जाता है । चतुर्दशी से प्रारम्भ करके, जब तक दुष्कारा चतुर्दशी न आये, तब तक जप करने से अभीष्ट प्राप्त होता है ॥१७६-१७७॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
कृष्णाष्टम्यां समारम्भ यावत् कृष्णाष्टमी भवेत् ॥१७८॥
सहस्र-संख्या जप्ते तु पुरश्चरणमिष्यते ।
यत् कृत्वा परमेशानि शिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ॥१७९॥

यह अन्य प्रकार का पुरश्चरण है । कृष्णाष्टमी से प्रारम्भ करके द्वितीय कृष्णपक्षीय अष्टमी (अर्थात् एक माह) पर्यन्त प्रतिदिन १००० जप करे । हे महेशानी ! इससे सर्व सिद्धि प्राप्त होती है ॥१७८-१७९॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे ॥१८०॥
अष्टमी नवमी-रात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः ।
दक्षम्यां पारणं कुर्यान्मित्स्य-मांसादिभिः प्रिये ।

षट्-सहस्रं जपेन्नित्यं भक्तिभाव परायणः ॥१८१॥

अन्य पुरश्चरण—देवी पूजा प्रभृति महोत्सव में कृष्णा चतुर्दशी से नवमी तक इष्ट पूजन करे । अष्टमी-नवमी की रात्रि में विशेष पूजन करे । दक्षमी

को मत्स्य मांस आदि द्वारा पारण करे । पूर्वोक्त दिनों में प्रतिदिन भक्तिपूर्ण होकर ६०० मंत्र जपे ॥१८०-१८१॥

अथैवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
अष्टम्याच्च चतुर्दश्यां नवम्यां वीरवन्दिते ॥१८२॥
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योदयो भवेत् ।
तावज्जप्ते निरातङ्कः सर्वं सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१८३॥

अन्य पुरश्चरण—हे वीर वन्दिते ! देवि ! अष्टमी, नवमी, तथा चतुर्दशी को सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय होने तक जप करने से सर्वसिद्धि का अधिपत्य प्राप्त होता है ॥१८२-१८३॥

अथैवान्य प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ॥१८४॥
अष्टम्याच्च चतुर्दश्यां पक्षयोरूपयोरपि ।
अस्तमारभ्य सूर्यस्य यावत् सूर्यस्तिमं भवेत् ।
तावज्जप्तो निरातङ्कः सर्वं सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१८५॥

अन्य प्रकार से पुरश्चरण—शुब्ल तथा कृष्णपथ की अष्टमी और चतुर्दशी को सूर्यस्ति से प्रारम्भ करके पुनः सूर्यस्ति पर्यन्त निरांतक जप करने से सर्वसिद्धिश्वरता प्राप्त हो जाती है ॥१८४-१८५॥

अथवा निर्जनस्थस्य अस्थिशयासनेन च ।
उदयान्तं दिवा जप्त्वा सर्वं सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१८६॥

अथवा निर्जन में अस्थियों का आसन बनाकर सूर्योदय से सूर्यस्ति तक जप करे । सर्वं सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥१८६॥

तेनासनेन वा देवी अन्तमारभ्य गास्वतः ।
जपित्वा चास्त-पर्यन्तं साधकः सिद्धिमान्युयात् ॥१८७॥
जपान्ते पूजयित्वा च गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥१८८॥

अथवा उसी आसन पर पूर्व दिन के सूर्यस्ति से प्रारम्भ करते हुये दूसरे दिन सूर्यस्ति तक निरन्तर जप करने पर साधक को सिद्धि मिल जाती है । जपान्त में पृष्ठा समाप्त करते हुये गुरु को दक्षिणा प्रदान करे ॥१८७-१८८॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
 सूर्योदयं समारभ्य घटिका च दश-ऋग्नात् ॥१८६॥
 ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने-दिने ।
 वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा च शरद्वेमन्त-शिशिराः ॥१८०॥
 वसन्तश्चैव पूर्वान्हे ग्रीष्मो मध्यन्दिनं तथा ।
 अपराह्ने प्रावृषः स्युः प्रदोषे शरदः स्मृताः ।
 अर्धरात्रौ तु हेमन्तः शेषे च शिशिरः स्मृतः ॥१९१॥

अन्य पुरश्चरण—प्रतिदिन सूर्योदय से दश घटी तक वसन्त प्रभृति ऋतु आते जाते हैं । पूर्वाह्न वसन्त है, मध्यम ग्रीष्म है, अपराह्न वर्षा, प्रदोष में शरद, अर्धरात्रि में हेमन्त एवं शेष रात्रि में शिशिर जाते ॥१८९-१९१॥

सूर्योदयं समारभ्य वसन्तात् समाहितः ।
 तावज्ज्यन्ते महेशानि पुरश्चर्या हि सिद्ध्यति ॥१६२॥
 ततः पूजादिकं कृत्वा शक्ति-युक्तश्च साधकः ।
 गुरवे दक्षिणां दत्त्वा सर्वं सिद्धिश्वरो भवेत् ॥१६३॥

सूर्योदय से वसन्त के अन्त तक साधक समाहित होकर जप करे । हे महेशानी ! इससे पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है ।

तदनन्तर अपनी शक्ति के साथ युक्त होकर पूजा करने के पश्चात् गुह को दक्षिणा दे । इससे सर्वसिद्धि आयत्त हो जाती है ॥१९२-१९३॥

अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
 ग्रीष्मादिषु-महेशानि पञ्चस्वर्तषु साधकः ।
 पृथग् जप्त्वा वरारोहे पुरश्चर्या हि सिद्ध्यति ॥१६४॥

अन्य विधि—हे महेशानी ! हे वरारोहे । यदि साधक इसी ग्रीष्मादि पञ्चऋतु में पृथग्-पृथक् रूप से जप करता है, तब पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है ॥१९४॥

पूर्वोक्त-विधिना सर्वं कर्त्तव्यं वीर-वन्दिते ।
 ऋतौ जप्त्वा समस्ते तु शक्तितः पूजयेत् पराम् ॥१६५॥
 एवमाचार्यं कृत्यं वै धनानामीश्वरो भवेत् ॥१६६॥

हे वीरवन्दिते ! पूर्वोक्त विधि के अनुसार सब करे । सभी ऋतु में
 (एक ही दिन में समस्त ऋतु में) यथाशक्ति जप करते हुये देवी पूजन करे ।
 इस प्रकार समस्त अनुष्ठान सम्पन्न करने पर साधक धनेश्वर हो जाता है
 ॥१६५-१६६॥

अथवान्य-प्रकारेण पुरश्चरण मुच्यते ।
 कुमारी—पूजनादेव षुरश्चर्यां-विधि समृतः ॥१६७॥

अथवा केवल कुमारी पूजा करने से भी पुरश्चरण जनित फल मिल जाता
 है ॥१६७॥

अथवान्य प्रकारेण षुरश्चरणमुच्यते ।
 गुरुमानीय संस्थाप्य देववत् पूजयेद्दिभुम् ।
 वस्त्रालङ्घार—भूषाद्यैः स्वयं सन्तोषयेद् गुरुम् ॥१६८॥

अन्य विधि—गुरु को बैठाकर उनका पूजन देववत् करे । वस्त्र, आभूषण
 तथा अलंकारादि से सन्तुष्ट करे ॥१६८॥

तत्सुतं तत्सुतं वापि तत्पत्निं च विशेषतः ।
 पूजयित्वा मनुं जप्त्वा सर्वं सिद्धीश्वरो भवेत् ॥१६९॥

अथवा गुरु पुत्र किवा गुरु पौत्र अथवा विशेष रूप से गुरु पत्नी की पूजा
 कर । पूजा समापन मंत्र जये । इससे सर्वसिद्धि मिल जाती ॥१६९॥

गुरु-सन्तोष-मात्रेण दुष्ट-मन्त्रोऽपि सिद्ध्यति ।
 मासि-मासि च मन्त्रस्थ संस्कारान् दशावा चतेत् ॥२००॥
 एवं ऋग-विधानेत् कृत्वा नित्यं हि साधकः ।
 षण्मासाभ्यन्तरे वापि एक-वर्षान्तरेऽपिवा ॥२०१॥
 साधनैः सुमगे भद्रे यदि सिद्धिनं जायते ।
 उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सत्यमेतन्मतं श्रृणु ॥२०२॥

गुरु के सन्तोष मात्र से दुष्ट मंत्र भी सिद्ध हो जाते हैं । मास-मास में मंत्र का दशावा संस्कार करे । जैसे जन्म, जीवन, ताड़न, बोधन, अभिषेक, विमली-करण, आष्यावन, तर्पण, दीपन तथा गुप्ति । इस विधि से निरवन्धन साधन द्वारा साधक छ मांस में अथवा एक वर्ष में सिद्ध प्राप्त कर लेना चाहिये । यह मेरा मत है । उस उपाय का श्रवण करो ॥२००-२०२॥

ख्यातिर्वाहन-भूषादि-लाभः सुचिर जीविता ।
 नृपाणां तत् कुलानां च वात्सल्यं लोक वश्यता ॥२०३॥
 महद्यैश्वर्यं नित्यञ्च पुत्र-पौत्रादि-सम्पदः ।
 अधमा सिद्धयो भद्रे षष्मासाभ्यन्तरे यदि ॥२०४॥
 एक-वर्षान्तरे वापि सन्ति शंकुर-वन्दिते ।
 साधकाश्च तदा सिद्धा नात्र कार्या विचारणा ॥२०५॥

ख्याति, वाहन तथा भूषणादि लाभ, चिरजीविता, नृप तथा नृप की कृपा लाभ, समस्त लोक वशीकरण, महा एश्वर्यं प्राप्ति, नित्य पुत्र-पौत्रादि सम्पत्ति लाभ को अधम सिद्धि कहते हैं । हे भद्रे ! इन्हें छ मांस अथवा एक वर्ष में प्राप्त हो जाना चाहिये । हे शंकर वन्दिते ! यदि यह सब उक्त समय में प्राप्त हो जाये, तब साधक को सिद्ध मानना होगा । इसमें अन्य विचारणा की आवश्यकता नहीं है ॥२०३-२०५॥

अत्रोपायात् प्रवक्ष्यामि यदि सिद्धि-विलम्बनम् ।
 ऋमणं बोधनं वश्यं धीडनश्च तथा प्रिये ॥२०६॥
 पोषणं तोषणञ्चैव दहनञ्च ततः परम् ।
 उपायाः सन्ति सप्तैते कृत्वा त्रेता युगेषु च ॥२०७॥

यदि सिद्धि प्राप्ति में विलम्ब होता है तब हे प्रिये ! ऋमण, बोधन, वश्य, पीडन, पोषण, तोषण तथा दहनादि सप्त उपाय त्रेता में प्रशस्त हैं । ॥२०६-२०७॥

द्वापरे च तथा भद्र उपायं सप्तमं स्मृतम् ।
 न प्रशस्तं कलौ भद्रे सप्त शंकर भाषितम् ॥२०८॥

ये द्वापर में भी प्रशस्त हैं किन्तु कलिकाल में प्रशस्त नहीं हैं। यह शंकर का कथन है ॥२०८॥

डाकिन्यादि-युतं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२०६॥
डाकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्जायते ।
राकिनी-पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२१०॥

तब डाकिनी आदि युक्त करके एक लाख जप करे । यदि तब भी सिद्धि नहीं मिलती तब राकिनी पुटित करके लक्ष जप करे ॥२०९-२१०॥

राकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्जायते ।
लाकिनी पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२११॥
लाकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्जायते ।
काकिनी पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२१२॥
काकिनी पुटितं कृत्वा यदि सिद्धिर्जायते ।
शाकिनी पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२१३॥
हाकिनी पुटितं कृत्वा जपे लक्षं समाहितः ॥२१४॥

राकिनी पुटित मंत्र से सिद्धि न होने पर लाकिनी का लाकिनी से सिद्धि न होने पर काकिनी का, काकिनी पुटित से सिद्धि न मिलने पर शाकिनी पुटित मंत्र का लक्ष जप करे । शाकिनी पुटित मंत्र समाहित चित्त से एक लाख जपे अन्यथा हाकिनी से पुटित लक्ष बार जपे ॥२११-२१४॥

तदा सिद्धो भवेन्मंत्रो नात्र कार्या विचारणा ।
हाकिनी पुटित कृत्वा यदि सिद्धिर्जायते
पुटितं सत्वरूपिण्या लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ॥२१५॥
पुटितं सत्वरूपिण्या यदि सिद्धिर्जायते ।
ककारादि क्षकारान्ता मातृता वर्ण-रूपिणी ॥२१६॥
तथा सम्पुटितं कृत्वा लक्षञ्च प्रजपेन्मनूम् ।
छिन्न-विद्यादि मन्त्रात्मेतन्त्रे निरूपिताः ॥२१७॥

तब सिद्धि मिल जाती है । यदि इतने पर भी सिद्धि न मिले तब सत्त्व-रूपिणी का एक लाख जप करे । सत्त्वरूपिणी पुष्टि मन्त्र से भी सिद्धि न मिलने पर काकारादि से अकार पर्यन्त वर्णरूपिणी मातृका की शरण ले । और उससे सम्पुटि करके एक लाख जप करे । छिन्न विद्या प्रभृति मंत्रों को समस्त तन्त्रों ने निरूपित किया है ॥२१५-२१७॥

एते ते सिद्धि मायान्ति मातृका-वर्ण-भावतः ।

निश्चितं मन्त्रसिद्धि स्यानात्र कार्या विचारणा ॥२१८॥

वर्णमयो पुटीकृत्य यदि सिद्धिर्न जायते ॥२१९॥

मातृका सम्पुटि मंत्रों से भिन्न-भिन्न सिद्धि मिलती है । इससे मंत्र सिद्धि होती है । मातृका वर्ण सम्पुटि मन्त्रों के जाप से विभिन्न सिद्धि मिलती है ॥२१८-२१९॥

ततो गुरुं पुटीकृत्य लक्षञ्च संजयेन्मनूम् ।

गुरुदेव—प्रसादेन अतुलां सिद्धिमाप्नुयात् ॥२२०॥

वर्णरूपिणी मातृका सम्पुटि जप से भी यदि सिद्धि न मिले तब गुरुबीज शुटि मन्त्र द्वारा लक्ष जप करे । गुरुदेव की कृपा से अतुला सिद्धि मिलती है ॥२२०॥

श्री पार्वत्युवाच—

आदिदेव महादेव आद्यन्त-गोपनं वद ।

यदि नो कथ्यते देव विमुञ्चामि तदा-तनुम् ॥२२१॥

श्री पार्वती कहती हैं—हे आदिदेव महादेव ! आदि तथा अन्त की गोपनीयता का उपदेश करें । हे देव ! अन्यथा मैं शरीर त्याग कर दूँगी ॥२२१॥

श्री ईश्वर उवाच—

आद्यन्त-गोपनं सूक्ष्मं कथं तत् कथयाम्यहम् ।

जम्बुद्वीपस्य वर्षेषु कलौ लोकाधमाः स्मृताः ॥२२२॥

गुरु भक्ति-विहीनाश्च भविष्यन्ति नुहे-गहे ।

दुष्कियायां रताः सर्वे परमज्ञान विजिताः ॥२२३॥

लौकिकाचारिणः सर्वे भविष्यन्ति गुहे-गुहे ।
 बिना शब्द-परिज्ञानं मन्त्रवाता द्विजो भवेत् ॥२२४॥
 मम सः श्रीमती-मंत्रः संसारोदभव बन्धनात् ।
 कथ्यते देव-देवेशि मन्त्र सर्वत्र सिद्धिदः ॥२२५॥
 जायते तेन में शङ्का कथं में प्राणवल्लभे ॥२२६॥

श्री ईश्वर कहते हैं—आदि और अन्त, गोपन एवं सूक्ष्म है। उसे मैं कैसे कह सकता हूँ ? कलिकाल में जम्बूद्वीपात्तर्गतं में लोकाधाम हैं ।

प्रत्येक गृह में गुह भक्ति विहीनता है और सभी दुष्कर्म युक्त होकर परम ज्ञान से वर्जित हैं ।

प्रत्येक घर बालों के लिये लोकाचार ही प्रधान हो जाता है। जिन्हें शब्द परिज्ञान नहीं है, ऐसे लोग मंत्रदाता हो गये हैं ।

मेरा वह श्रीमती मंत्र जिससे संसारोदभव बन्धन से ब्राण मिलता है सर्वत्र सिद्धि प्रद है । हे देवदेवेशि ! हे प्राण बल्लभे ! ऐसे सिद्धिप्रद मंत्र के रहने संशय चित्त होने का क्या कारण है ॥२२२-२२६॥

श्रो भैरव्युभाष—

भूतनाथ महाभाग हृदये में कृपां कुरु ।
 कथ्यतां कथ्यतां देव ब्रतस्ते सेविका वयम् ॥२२७॥
 श्री भैरवी कहती हैं—हे भूतनाथ ! हे महाभाग ! मुझ पर कृपा करें ! हे देव कृपया कहें ! मैं आपकी सेविका हूँ ॥२२७॥

श्री ईश्वर उवाच—

सुभगे श्रृण में मातः कृपया कथ्यामि ते ।
 प्रथमें डाकिनी बौजं युवती षोडशाक्षरम् ॥२२८॥

अं आं इं इं उं ऊं क्रूं क्रूं लं लं एं एं ओं ओं अं अं ॥

डाकिनी देव-देवस्य ईरितं बोजमुत्तमम् ॥२२९॥

आद्यन्त-पृष्ठितं कृत्वा मन्त्रं लक्षं जपेद् यदि ।

तदा सिद्धो वरारोहे नान्यथा वचनं मम ॥२३०॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि राकिनी-बीजमद्भुतम् ।

एकोच्चारण—मात्रेण सत्यस्त्रेता-युगे भवेत् ॥२३१॥

कं खं गं धं डं चं छं जं झं जं दश तथा महेश्वरी ।

इति ते कथितं भक्त्या राकिनी बीज-मद्भुतम् ॥२३२॥

श्री महादेव कहते हैं—हे सुभगे ! हे माता ! शब्दन करो । मैं कृपावशात्
प्रथमतः यौवन सम्पन्ना पोडशाक्षरी डाकिनी बीज कहता हूँ ।

अं आं इं ईं उं ऊं ऊं ऊं लं लं एं एं ओं औं अं अं ।

यह पोडशाक्षर डाकिनी बीज है, जो देवाधिदेवों का भी अभीष्ट है ।

मंत्र के आदि और अन्त में सम्पुटित करके एक लाख जप करे । हे वरारोहे !
इससे मंत्र सिद्धि होती है । मेरा वचन अन्यथा नहीं होता ।

अब अद्भुद् राकिनी बीज सुनो । इसका एक बार उच्चारण करने मात्र से
त्रेता भी सत्ययुग हो जाता है ।

कं खं गं धं डं चं छं जं झं बं, यह दशाक्षरी राकिनी बीज है । तुम्हारी
भक्ति देखकर यह बीज मंत्र कहा गया है ॥२२८-२३२॥

टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं दशकं परमेश्वरी ।

इति ते कथितं भक्त्या लाकिनी बीज निर्णयम् ।

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि काकिनी सिद्धि दायिनीम् ॥२३३॥

पं फं बं भं मं यं रं लं अष्टार्णः वीर वन्दिते ।

कथितं काकिनी-बीजं चतुर्वर्ग-फलप्रदम् ॥२३४॥

हे परमेश्वरी ! टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं यह दशाक्षरी लाकिनी बीज
है । अब सिद्धप्रद काकिनी बीज कहता है जो चतुर्वर्ग फलप्रद है । पं फं बं भं
मं यं रं लं । हे वीर वन्दिते ! यही अष्टार्ण काकिनी बीज है ॥२३३-२३४॥

अधुनां सम्प्रवक्ष्यामि सुभगे शृणु शाकिनीम् ॥२३५॥
 वं शं षं सं चतुर्वर्णं वांचित्तार्थप्रदं प्रिये ।
 इदन्तु शाकिनी-बीजं चतुर्वर्णं प्रदायकम् ॥२३६॥

हे सुभगे ! अब शाकिनी बीज सुनो । वं शं पं सं, यह चतुर्वर्ण इच्छित
 फल तथा चारो वर्गं प्रदान करने वाले हैं ॥२३५-२३६॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि सुभगे शृणु हाकिनीम् ।
 हं लं कं हाकिनी-बीजं क्षिप्रसिद्धिं प्रदायकम् ॥२३७॥
 सत्त्वस्वरूपिणी बीजं शृणु सिद्धिं-प्रदायकम् ।
 अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ऋं लृ लृ एं एं ओं औं अं अः ।
 पोडशार्णं महाबीजं सत्त्वमध्ये प्रकीर्तितम् ॥२३८॥

हे सुभगे ! डाकिनी बीज सुनो । हं लं कं बीज क्षिप्रता से सिद्धि देते हैं ।
 अब सत्त्वस्वरूपिणी का बीज सुनो जो सर्वसिद्धि प्रदायिका हैं । अं आं इं ईं उं
 ऊं ऋं ऋं लृ लृ एं एं ओं औं अं अः यह पोडशाक्षर महाबीज सत्त्व स्वरूपिणी
 का है ॥२३७-२३८॥

रजस्वरूपिणी बीजं शीघ्रसिद्धि-प्रदायकम् ।
 कं खं गं घं ङं चं छं जं झं अं टं ठं डं णं तं थं ।
 इदं सप्तदशार्णं हि रजोमध्ये प्रकीर्तितम् ॥२३९॥

अब शीघ्र सिद्धिवात्री रजस्वरूपिणी बीज सुनो । कं खं गं घं ङं चं छं जं
 झं अं टं ठं डं णं । यह सप्तदशार्ण मन्त्र रजोगुण में स्वीकृत है ॥२३९॥

रम्यं तमोमयी-बीज अधुना ते वदाम्यहम् ।
 दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं कं ।
 इदं सप्त दशार्णं हि तमोमध्ये उदाहृतम् ॥२४०॥

यह दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं कं रूपी सप्तदशार्ण
 मन्त्र तमोमयी बीज है ॥२४०॥

अधुना सम्प्रयक्ष्यामि मातृका बीजसदभुतम् ॥२४१॥

अं आं इं ईं उं ऊं ऊं ऊं लं लं लं एं एं ओं ओं ओं अं अं कं खं गं घं ङं चं
छं जं झं बं टं ठं ठं ठं णं तं थं वं नं पं फं वं भं मं यं रं लं वं शं वं हं कं ।

इदं पञ्चाशदर्णं हि मातृकाया प्रकीर्तितम् ॥२४२॥

अब अद्भुद् मातृका बीज सुनो । उपरोक्त ५० वर्ण ही मातृका हैं
॥२४१-२४२॥

अनुलोमविलोमेन पुटीकृत्य जणं चरेत् ।

लक्ष्मी यावन्महेशानि ततः सिद्धो न संशयः ॥२४३॥

गुरुबीजं समुद्दिष्टं गुरुरित्यांक्षर-द्वयम् ॥२४४॥

इष्ट मंत्र के साथ-साथ मातृका बीज को अनुलोम विलोम क्रम से जप करे ।
हे महेशानी ! इस प्रकार लक्ष जप करते पर निसंदिग्ध रूप से सिद्धि मिलती है ।

“गुरु” इस द्वयक्षर को ही गुरुबीज कहते हैं ॥२४३-२४४॥

डाकिनी राकिनी देवि लाकिनी काकिनी ततः ।

शाकिनी हाकिनी संज्ञा सत्त्व-रूपा ततः प्रिये ।

रजोरूपा तमोरूपा मातृका रूपिणी गुरुः ॥२४५॥

हे देवि ! डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी तथा हाकिनी एवं
सत्त्व स्वरूपिणी हैं । तदनन्तर रजोरूपा, तमोरूपा एवं मातृकारूप एवं गुरु हैं
॥२४५॥

एतास्तु परमेशानी मूर्तिः पञ्चाशदक्षरम् ।

डाकिनी च महादेवि अणिमा-सिद्धि दायिनी ॥२४६॥

शाकिनी लधिमा-सिद्धिदायिनी लाकिनी तथा ।

प्राप्ति सिद्धि-दायिनी च काकिनी काम्य-दायिनी ॥२४७॥

शाकिनी माहिमा-सिद्धि-दायिनी हाकिनी ततः ।

कामावशायिता-सिद्धि जपादेव प्रयच्छति ॥२४८॥

हे परमेशानी ! यह सब ५० अक्षर ही मूर्ति हैं । हे महादेवी ! डाकिनी
अणिमा सिद्धि देती हैं ।

राकिनी तथा लाकिनी=लघिमा सिद्धि तथा काम्यफल प्रदायिनो ।

काकिनी=प्रासिरूप सिद्धिदात्री ।

शाकिनी=महिमा सिद्धिदात्री ।

हाकिनी=कामवशायिता सिद्धिदात्री कही गयी है ॥२४६-२४८॥

सत्वरूपा तमोरूपा रजोरूपा तथैव च ।

एताश्चैव महादेवि चतुर्वर्ग ददन्ति हि ॥२४९॥

हे महादेवि ! सत्वरूपा-रजोरूपा तथा तमोरूपा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष देती हैं ॥२४९॥

पञ्चाशद्वर्णरूपा या निवर्णं सा ददाति हि ।

गुरुर्ददाति सकलं ब्रह्माण्ड-ज्ञानमव्ययम् ॥२५०॥

इति ते कथितं भक्त्या डाकिन्यादि-विनिर्णयम् ॥२५१॥

यह ५० वर्ण रूपा मातृका देवी निवर्णि देती हैं । गुरु अन्यथा ब्रह्माण्ड ज्ञान देते हैं । तुम्हारी भक्ति से मुग्ध होकर इस प्रकार का विवरण दिया । डाकिनी आदि वर्णों की देवता हैं ॥२५०-२५१॥

डाकिनी राकिनी चैव लाकिनी काकिनी तथा ।

शाकिनी डाकिनी देवी वर्णनामंत्र देवता ॥२५२॥

डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिनी वर्ण की जन्म देवता हैं ॥२५२॥

गुणानां सिद्धिवर्णनां षड्गते अधिदेवताः ।

डाकिनादेविना ज्ञानं वर्णं वर्णं पृथक् पृथक् ।

अज्ञानात् प्रजपेन्मन्त्रं डाकिन्यादेश्च भक्षणम् ॥२५३॥

विना वर्ण-परिज्ञानम् कोटि पुरश्चरणेन किम् ।

तस्य सर्वं भवेद् दुःखमरण्ये रोदानं यथा ॥२५४॥

श्रृणु ध्यानं प्रवक्ष्यामि डाकिनीनां शुचिस्मिते ॥२५५॥

सिद्धिप्रद वर्ण के उक्त छ अधिदेवता हैं । प्रत्येक वर्ण का पृथक्-दृथक् रूप से (डाकिनी प्रभूति के ज्ञान के बिना) मन्त्र जप करने पर वह मन्त्र डाकिनी आदि द्वारा भक्षित हो जाता है ।

इनके ज्ञान के बिना करोड़ों पुरश्चरण भी व्यर्थ हैं । अतः अरण्य में रोदन करने के समान मन्त्र जपने वाला दुःख का भागी हो जाता है । हे शुचिस्मिते ! मनोयोग से डाकिनी आदि का ध्यान सुनो ॥२५३-२५५॥

ध्यानानि—

शरच्चन्द्र प्रतीकाशां द्विभुजां लोललोचनाम् ।
सिन्दूर-तिलकोद्दीप्त-अञ्जनाच्छित लोचनाम् ॥२५६॥
कृष्णाम्बर-परिधानां नानालङ्घार भूषिताम् ।
ध्याये च्छशिमुखीं नित्या डाकिनी-मन्त्र सिद्धये ॥२५७॥

ध्यान कहते हैं । शरतकालीन चन्द्र के समान शुभ्रा, द्विभुजा, चंचल लोचना, सिन्दूर तिलक द्वारा उद्दीप्ता तथा अञ्जन से अन्वित लोचनों वाली, कृष्णाम्बर परिधान युक्ता, नानालङ्घार भूषिता शशिमुखी डाकिनी देवी का ध्यान करने से मन्त्र सिद्धि हो जाती है ॥२५६-२५७॥

अरुणादित्य-संङ्घाशां द्विभुजां मृगलोचनाम् ।
सिन्दूर - तिलकोद्दीप्त-अञ्जनाच्छित-लोचनम् ॥२५८॥
शुल्काम्बर परिधानां नानाभरण भूषिताम् ।
ध्याये च्छशिमुखीं नित्यं राकिनी मन्त्रसिद्धये ॥२५९॥

नवोदित आदित्य के समान दीमि वाली, द्विभुजा, मृगलोचना, सिन्दूर तिलक से शोभिता, अंजन युक्त नेत्रों वाली, शुल्काम्बर परिधान युता, नाना आभरण विभूषिता शशिमुखी राकिनी का ध्यान करने से मन्त्र मिद्धि (राकिनी मन्त्र सिद्धि) हो जाती है ॥२५८-२५९॥

सिन्दूरवर्ण-संङ्घाशां द्विभुजां खंञ्जनेश्चणाम् ।
सिन्दूर तिलको द्दीप्तं-अञ्जनाच्छित-लोचनम् ॥२६०॥
शुक्लाम्बर-परिधानां नानालङ्घार भूषिताम् ।
ध्याये च्छशिमुखीं नित्यं लाकिनीं मन्त्रसिद्धये ॥२६१॥

सिन्दूर के समान रक्तवर्ण, द्विभुजा, खंञ्जन नयना, सिन्दूर तिलको से दीमा, अंजन अंजित नेत्रों वाली, शुक्लाम्बर परिधाना, नाना अलङ्घार भूषिता

शशिमुखी लाकिनी देवी के ध्यान से उनके मन्त्र की सिद्धि होती है ॥२६०-२६१॥

यवा-यावक संकाशां द्विभुजां खंजनेक्षणाम् ।

सिन्दूरतिलकोद्दीप्त अंजनाञ्जित लोचनाम् ॥२६२॥

शुक्लाम्बर परिधानां नानाभरण भूषिताम् ।

ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं काकिनीं-मन्त्रसिद्धये ॥२६३॥

आलवतक (आलता) के समान रक्त वर्णा, द्विभुजा, खंजन के समान चपल नेत्रों वाली, तिलकोद्दीप्ता, अंजन अंजित चक्षुयुतां, खेत वसन परिधाना, नाना अलंकारों से विभूषिता शशिमुखी शाकिनी के ध्यान से उनका मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥२६२-२६३॥

शुक्लज्योतिः प्रतीकाशां द्विभुजां मृगलोचनाम् ।

सिन्दूर तिलकोद्दीप्त अंजनाञ्जित लोचनाम् ॥२६४॥

कृष्णाम्बर परिधानां नानालङ्घार भूषिताम् ।

ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं शाकिनीं मन्त्रसिद्धये ॥२६५॥

शुभ्र च्योति स्वरूपा, द्विभुजा, मृगलोचना, सिन्दूर तिलक से उद्दीप्ता, अंजनाञ्जित लोचना, कृष्णाम्बर परिधाना, नाना अलंकार विभूषिता, शशिमुखी शाकिनी का ध्यान करने से उनके मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं ॥२६४-२६५॥

शुक्ल-कृष्णारुणाभासां द्विभुजां लोल-लोचनाम् ।

भ्रमद् भ्रमर संङ्घाशां कुटिलालक-कुन्तलाम् ॥२६६॥

सिन्दूर - तिलकोद्दीप्त - अंजनाञ्जित-लोचनाम् ।

रक्त-वस्त्र- परिधानां शुक्ल - वस्त्रोत्तरीयिणीम् ।

ध्यायेच्छशिमुखीं नित्यं हाकिनीं-मन्त्रसिद्धये ॥२६७॥

जिनको दीसि शुक्ल कृष्ण तथा अरुण है, जो द्विभुजा, लोल लोचना है, भ्राम्यमाण भ्रमर की तरह जिनकी केशराशि कुन्तल है, जो सिन्दूर तिलक से उद्दीप्त है, अंजनाञ्जित लोचनों वाली है, रक्त वस्त्र पहनती है, जिनका उत्तरीय खेत है, ऐसी शशिमुखी हाकिनी का ध्यान करने से उनका मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥२६६-२६७॥

त्रिगुणायाश्च देवेशि ध्यानं पूर्वं उदाहृतम् ।
 अधुना सम्प्रवक्ष्यामि मातृका-ध्यानमुत्तमम् ॥२६८॥
 पञ्चविशलिपिभिर्भक्त-मुखदाः पत्नमध्य-पक्षस्थलीम्,
 भास्वन्मौलि-निबद्ध-चन्द्र-शकलामापीन-तुङ्गस्तनीम् ।
 मुद्रामक्षगुणं सुधाद्य कलशं विद्याच्च हस्ताम्बुजे ।
 विभ्राणां विशद्प्रभां विनयनां वागदेवतामाश्रये ॥२६९॥

हे देवेशि ! त्रिगुणमयी सत्त्व, रज एवं तमः रूपा का ध्यान पूर्वकथित है ।
 अब उत्कृष्ट मातृका ध्यान सुनो ।

५० लिपियों के मातृका ध्यान द्वारा मुख, हस्त, चरण, कटि तथा वक्षस्थल
 चिभवत हो गया है । जिनकी मौलि में देवीप्रमाण चन्द्र खण्ड निबद्ध है, जो
 पीनस्तनी है, कर कमलों में मुद्रा, अक्षमाला, अमृत कलश तथा पुस्तक धारण
 करती है, जो विशद प्रभा से युक्त है, जो तीन नेत्रों वाली है, हम उन वाग-
 देवता की शरण लेते हैं ॥२६८-२६९॥

गुरोरपि महेशानि पूर्वोक्त-ध्यानमाचरन् ।
 पादादिभिर्वरारोहे-सम्पूर्य व्रजपेन्मनूम् ॥२७०॥

हे महेशानी ! गुरुदेव का भी पूर्वोक्त ध्यान करे ! हे वरारोहे ! उन्हें
 पादादि द्वारा सम्पूर्जित करके पूजा समाप्तार्थ मन्त्र जप करे ॥२७०॥

पूर्वोक्तः यस्य यद्वीजं तन्मत्रं तस्य निर्णयम् ।
 अं डाकिन्यै नमः स्वाहा कं राकिन्यै नमस्ततः ॥२७१॥
 टं लाकिन्यै नमः स्वाहा पं काकिन्यै नमस्ततः ।
 वं शाकिन्यै नमः स्वाहा हं हाकिन्यै नमस्ततः ॥२७२॥
 तत्तत् ध्यानेन इत्युक्त्वा पूजयेदुपचारतः ॥२७३॥

पहले जिसका जो बीज कहा है, उसी से उनका मन्त्र निर्णीत होता है ।
 जैसे अं डाकिन्यै नमः स्वाहा: । कं राकिन्यै नमः स्वाहा, टं लाकिन्यै नमः स्वाहा,
 पं काकिन्यै नमः स्वाहा, वं शाकिन्यै नमः स्वाहा, हं हाकिन्यै नमः स्वाहा ।

उन-उन देवियों का पूर्व कथित ध्यान करके इस-इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये उपचार पूर्वक पूजन करे ॥२७१-२७३॥

उक्त बीजेन पुटितं कृत्वा मन्त्रं जपेत् यदि ।

तदा सिद्धो भवेन्मत्रो शापादिदोषदूषितः ॥२७४॥

तदनन्तर पूर्वोक्त बीज से सम्पुटित मन्त्रों का जप करना चाहिये । इससे मन्त्रों का शापादि विमोचन होता है और मन्त्रसमूह सिद्ध हो जाते हैं ॥२७४॥

इति ते कथितं दिव्यं कलि कालस्य सम्मतम् ॥२७५॥

कलौ भारतवर्षे च नान्यद्वर्षे कदाचन ।

शमादि-षोडश-भाण्डारं डाकिनी-सिद्धि-संयुतम् ॥२७६॥

इस प्रकार जो कलिकाल में दिव्य है उसे कहा गया । कलियुग में भारतवर्ष के समान कोई वर्ष नहीं है । डाकिनी सिद्धि से शमादि षोडश भण्डार प्राप्त हो जाते हैं ॥२७५-२७६॥

चण्डिकादि दश-भाण्डारं काकिनी-सिद्धि संयुतम् ।

शोभादि दश-भाण्डार लाकिनी-सिद्धि निर्णयम् ॥२७७॥

गदादि दश-भाण्डारं शकिनी सिद्धि निर्णयम् ।

कल्याणीत्यादि कीर्त्यन्तं शाकिनो सिद्धि-निर्णयम् ॥२७८॥

काकिनी-सिद्धि=चण्डिकादि दश भण्डार प्राप्ति,

लाकिनी सिद्धि=शोभादि दश भण्डार प्राप्ति,

राकिनी सिद्धि=गदादि दश भण्डार प्राप्ति,

शाकिनी सिद्धि=कल्याणी से कीर्ति पर्यन्त प्राप्ति ॥२७७-२७८॥

वद्धादि विलक्षणान्तं हाकिनी सिद्धि-निर्णयम् ।

गुरुदेवां विनाभद्रे निष्फलं श्रमः केवलम् ॥२७९॥

कलिकाले वरारोहे कलहं गुरु-शिष्ययोः ।

भविष्यति न संदेहः प्रहारं गुरु-शिष्ययोः ॥२८०॥

हाकिनी सिद्धि होने पर विलक्षण पर्यन्त सिद्ध हो जाता है हे भद्रे ! गुरु के विना साधक का सर्व परिश्रम विफल हो जाता है ।

हे वरारोहे ! कलिकाल में गुरु शिष्य में कलह होती है, यहाँ तक कि मारपीट भी हो जाती है ॥२७९-२८०॥

इति ते कथितं सर्वं कालिकायाः सुदुर्लभम् ।
कालिका भैरवो देवे जागत्ति हि सदा कलौ ॥२८१॥
तारा चैव महाविद्या तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
धनदा छिन्नमस्ता च मातंगी बगलामुखी ॥२८२॥
त्वरिता अन्नपूर्णा च तथा वार्गवादिनी प्रिये ।
महिषध्नी विशालाक्षी तारिणी भुवनेशिका ॥२८३॥
धूमावती भैरवी च तथा प्रत्यज्ञिरादिका ।
दुर्गा शाकंभरी चैव कलिकाले हि निद्रिता ॥२८४॥

मैंने अति दुर्लभ कालिका मत्र साधना का उपदेश दिया है । कलिकाल में भैरव तथा कालिका देवी सदा जागते रहते हैं । कलिकाल में महाविद्या तारा, त्रिपुर सुन्दरी, धनदा, छिन्नमस्ता, मातंगी, बगलामुखी, त्वरिता, अन्नपूर्णा, वार्गवादिनी, महिषध्नी, विशालाक्षी, तारिणी, भुवनेश्वरी, धूमावती, भैरवी, प्रत्यंगिरा प्रभूति, दुर्गा, शाकंभरी निद्रित रहती हैं ॥२८१-२८४॥

एतासां जप मात्रेण निद्राभङ्गेति जायते ।
निद्राभङ्गे इते देवि सिद्धि हानिश्च जायते ॥२८५॥
किं तासां जप पूजायां हानिः स्यादुत्तरोत्तम् ।
ब्राह्मणे क्षत्रिये वैश्ये शूद्रे विद्या प्रशस्यते ॥२८६॥

जप मात्र से इनकी निद्रा भंग हो जाती है । हे देवि ! निद्रा भंग से हो सिद्धि हानि होती है । इनका जप पूजन करने से उत्तरोत्तर क्षति होती है । क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र सभी के लिये मन्त्र विद्या प्रशस्त है ॥२८५-२८६॥

सत्यादि च चतुर्युगे सर्वं-जातिषु कालिका ।
प्रशस्ता च कालिका विद्या अस्याश्च फलबोधिका ॥२८७॥

चारों युगों में सभी जाति के लिये कालिका प्रशस्ता है । कालिका विद्या सबके लिये फलदायिका है ॥२८७॥

उषायास्तत्र वक्ष्यामि येन सिद्धिः प्रजायते ।
सहस्रं डाकिनीमंत्रं निशायां प्रजपेत् यदि ।
बहुकाले तदा सिद्धिर्जयिते नात्र संशयः ॥२८८॥

वह सिद्धि प्रद उपाय कहता हूँ । निशाकाल में १००० डाकिनी मन्त्र बहुत समय तक जपने से अवश्य सिद्धि मिलती ॥२८८॥

स्त्री शूद्राणां पुरश्चर्यां नास्ति भद्रे कदाचन ।
जपपूजा सदैवासां प्रशरता वीरवन्दिते ॥२८९॥

हे भद्रे ! स्त्री तथा शूद्र कभी भी पुरश्चरण न करें । हे वीरवन्दिते ! इनके लिये सदा जप पूजा प्रशस्त है ॥२८९॥

चन्द्र-सूर्योपरागे च शूद्राणां सिद्धिरूपतमा ।
जायते सुभगे मात गुरु भक्तिर्भवेत् यदि ॥२९०॥
तदा सिद्धिमवान्नोति गुरुभक्त्या विशेषतः ॥२९१॥

चन्द्र-सूर्य ग्रहण काल में मउ जप द्वारा शूद्र भी सिद्धि प्राप्त करते हैं । यदि गुरु भक्ति है तब उस गुरु भक्ति से ही सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं ॥२९०-२९१॥

॥ इति दक्षिणाम्नाये श्री कद्मालमालिनीतंत्रे पञ्चमः पटलः समाप्तः ॥

॥ दक्षिणाम्नाय का श्री कंकालमालिनी तंत्र पञ्चम पटल समाप्त ॥

॥ इति ॥

